परामर्शदाता होता है, वह जटिल परिस्थितियों में एक सहायक और युद्ध व शिकार की स्थिति में एक साथी होता है। इसी तरह से रिश्तेदारों की महिलाएँ मिल-जुलकर कृषि का काम करती हैं, घरेलू कार्यों में सहायता और एक-दूसरे के बालकों का पालन-पोषण करती हैं।

आज के औद्योगिक और नौकरशाही के युग में एक व्यक्ति का मूल्यांकन नातेदारी के आधार पर न होकर योग्यता के आधार पर होता है। एक व्यक्ति से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने पद और राष्ट्र के प्रति निष्ठावान रहे, लेकिन नातेदारी दुराग्रही है और विकासशील राष्ट्रों में तो नौकरशाही का तर्क नातेदारी की निष्ठाओं से हार जाता है। एक उच्च पद का अधिकारी अपने से नीचे के अधिकारियों के चयन के समय योग्यता के स्थान पर सम्बन्धों की निकटता को महत्व प्रदान करता है। यह हमारे लिए भाई-भतीजावाद है, किन्तु उसके लिए एक नैतिक कर्तव्य है। आज गतिशील समाज में नातेदारों के सम्बन्धों का विस्तार पिता-पुत्र सम्बन्धों से आगे महत्वपूर्ण नहीं है, और इनमें भी घनिष्ठता का अभाव है। फिर भी बूढ़े माता-पिता को अकेले रहने देने अथवा सुरक्षा घरों में रखने की बात ग्रामीण व आदिवासियों/जनजातियों को चौंका देने वाली तथा अनैतिक लगती है। आधुनिक समाज नातेदारी सम्बन्धों की कमी वाला समाज कहा जा सकता है, फिर भी उसमें नातेदारी के मनोभाव व दायित्व तो विद्यमान हैं ही। अगर हमारे अपने सगे चाचा, मामा, बुआ इत्यादि का पुत्र बुरे दिन का मारा हमारे पास आता है तो उसकी मदद करना हमारी जिम्मेदारी होती है। विक्टोरिया परिवार का हर एक व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान केवल इसीलिए ही था कि वे "एक ही रक्त के थे।" इसी आधार पर एक नातेदार की मृत्यु या अपमान का बदला लेना बन्धुओं का कर्तव्य माना जाता है।

4. आर्थिक हितों की सुरक्षा (Security of Economic Interest)—**मुरडॉक** के अनुसार, नातेदारी समूह, एक व्यक्ति नहीं, अपितु रक्षा पंक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब एक व्यक्ति संकट में होता है या जब उसे किसी आर्थिक कार्य को या सांस्कृतिक दायित्वों को पूर्ण करना होता है। संक्षेप में, जब उसे परिवार के बाहर सहायता की जरूरत हो तब वह अपने विस्तृत नातेदारी समूह की तरफ मदद के लिए निहार सकता है। अतएव समुदाय या सम्पूर्ण जाति में अन्य सदस्यों की अपेक्षा नातेदारों का उसे सहायता देने का दायित्व सबसे अधिक है। वह भी इसी तरह रिश्तेदारों से आपसी दायित्वों के द्वारा बँधा होता है। इनमें भी रक्त सम्बन्धी विशेष महत्व रखते हैं, क्योंकि वैवाहिक नातेदारों की अपेक्षा रक्त सम्बन्धियों को एक व्यक्ति अपने अधिक निकट अनुभव करता है।

लूसी मेयर के अनुसार, "विभिन्न समाजों में स्वीकृत बन्धुत्व के बन्धन लोगों की खेती पर और दूसरी जायदाद पर अधिकार समान हितों की पूर्ति में परस्पर सहायता व दूसरों पर आधिपत्य प्रदान करते हैं। प्रभुता प्राप्त व्यक्तियों पर यह दायित्व रहता है कि आश्रितों का कल्याण करें। आश्रितों का धर्म आज्ञापालन है। सभी लोगों का कर्तव्य है कि ऐसे अवसरों पर जहाँ बन्धुत्व की मान्यता का प्रश्न है, आपसी सहयोग करें।"

5. मानसिक सन्तुष्टि (Mental Satisfaction)—नातेदारी की भावना मानसिक सन्तुष्टि देती है। इस तरह की प्रवृत्ति लोगों में न सिर्फ सरल और ग्रामीण समाजों में, अपितु आधुनिक नगरीय समाजों में भी पाई जाती है। नगर में प्रवासी लोग अपने आवास स्थलों की निकटता में स्वयं को अत्यन्त सुरक्षित व सन्तुष्ट अनुभव करते हैं।

6. मानवशास्त्रीय ज्ञान का आधार (Anthropological Knowledge Base)—मानवशास्त्र के अध्ययन में नातेदारी का ज्ञान एक विशेष स्थान रखता है। प्रारम्भिक मानवशास्त्रियों ने ज्यादातर अध्ययन नातेदारी से ही शुरू किये थे। मैक्लैनन, मॉर्गन, मैलिनोवस्की, रैडक्लिफ ब्राउन, हेनरी मेन, रिवर्स, इवान्स प्रिचार्ड, फ्रेंच बोआस, सैलिगमेन इत्यादि प्रमुख मानवशास्त्रियों के अध्ययन एक अथवा एक से अधिक जनजातियों की नातेदारी व्यवस्था, परिवार और विवाह आदि से सम्बन्धित थे। वे नातेदारी के अध्ययन के आधार पर सामाजिक संरचना को समझना चाहते थे। इसके साथ ही वे समाज और संस्थाओं के विकास में भी रुचि रखते थे। नातेदारी का अध्ययन इस दिशा में अत्यधिक सहायक साबित

हुआ। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रारम्भिक समाजों में वंशानुक्रम समूह की आधारभूत राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा क्षेत्रीय इकाइयाँ रही हैं।

नातेदारी की रीतियाँ
(KINSHIP USAGES)

जब हमारा किसी व्यक्ति से सम्बन्ध बन जाता है, तो वह यहीं तक सीमित नहीं रहता है अपितु उस रिश्ते से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार का व्यवहार भी पनपता है। अलग-अलग प्रकार के सम्बन्धियों के प्रति हमारे व्यवहार भिन्न-भिन्न तरह के होते हैं। किसी के साथ हमारे सम्बन्ध श्रद्धा पर आधारित होते हैं तो किसी के साथ आदर, प्रेम, मधुरता, परिहास अथवा हँसी-मजाक पर आधारित होते हैं। सन्तानों का माता-पिता के साथ व्यवहार श्रद्धा व सम्मान का है। पति-पत्नी के मध्य प्रेम का सम्बन्ध है, तो जीजा-साली के मध्य मधुरता का सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार समाज में दो सम्बन्धियों के मध्य किस तरह के व्यवहार होंगे, इसके नियम बने होते हैं जिन्हें हम नातेदारी की रीतियाँ कहते हैं। नातेदारी की प्रमुख रीतियाँ निम्नवत् हैं—

1. परिहार अथवा विमुखता (Avoidance)—परिहार अथवा विमुखता का यह अर्थ है कि कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं, जिनमें निकटता तथा आत्मीयता होते हुए भी एक-दूसरे से बचने का प्रयास करते हैं, एक-दूसरे के सामने नहीं आते। वे आपस में अन्त:क्रिया करने में संकोच करते हैं। विभिन्न समाजों में सास अपने दामाद के सामने मुँह ढक लेती है, वधु अपने ससुर से, जेठ से और पति से बड़े लोगों के सामने घूँघट निकाल लेती है तथा उनसे दूरी रखती है।

कई समाजों में भाई-बहिन आपस में परिहार का पालन करते हैं। श्रीलंका की वेड्डायड जनजाति में भाई-बहिन के मध्य परिहार प्रचलित है; यहाँ तक कि वे एक ही छत के नीचे नहीं रह सकते और साथ-साथ भोजन भी नहीं कर सकते। कहीं-कहीं पर तो ऐसे परिहार पराकाष्ठा तक पहुँच गए हैं। **रिवर्स** ने इस तरह के उदाहरण भी दिये हैं जबकि भाई-बहिन जीवन-भर परिहार रखते हैं यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् भी उस घर में भाई को प्रवेश की अनुमति नहीं होती है, जिसमें बहिन का शव रखा हो। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में अगर भाई अपनी बहिन को प्रेम-प्रसंग करते देख ले तो तीनों को आत्महत्या करनी पड़ती है।

लगभग सभी समाजों में पुत्र-वधू तथा सास-ससुर परिहार पाया जाता है। योकाधिर जनजाति में बहू अपने ससुर और जेठ के चेहरे को नहीं देख सकती है और दामाद को भी अपनी सास-ससुर के चेहरे को नहीं देखना चाहिए। ओस्टयाक जनजाति में जब तक कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हो, बहू को ससुर के सामने जाने की अनुमति नहीं होती है। अगर उनका कहीं सामना हो जाता है तो वे मुँह को ढक लेती हैं। न्यूगिनी की बुकाऊ जनजाति में दामाद तथा सास-ससुर एक-दूसरे का नाम नहीं ले सकते, एक-दूसरे को स्पर्श नहीं कर सकते और न ही एक-साथ भोजन कर सकते हैं। अगर ससुर को दामाद के सामने भोजन करना होता है, तो वह मुँह ढँक कर भोजन करता है। विभिन्न जनजातियों में सास अपने दामाद का नाम तक नहीं ले सकती है। ऑस्ट्रेलिया की जनजातियों में सास अगर जंगल में लकड़ियाँ चुन रही हो और उधर से दामाद आ जाये तो उसे छुप जाना होता है।

भारतीय समाज में भी सास-ससुर और ज्येष्ठ से पुत्र-वधू परिहार रखती है। इतना ही नहीं अपितु पति के पिता के भाई और उनकी पत्नियों से भी बहू परिहार रखती है। ऐसे ही छोटी बहिन का पति, पत्नी की बहिन से परिहार रखता है। पत्नी अपने पति का नाम तक नहीं लेती है।

सवाल यह उठता है कि विविध सम्बन्धियों में ऐसे परिहार क्यों प्रचलित हैं? इसे स्पष्ट करने हेतु विभिन्न समाजशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं—

टॉयलर के अनुसार, परिवार का प्रारम्भिक स्वरूप मातृसत्तात्मक था और ऐसे परिवारों में दामाद बाहर का व्यक्ति होने से एक अपरिचित व्यक्ति था। इस प्रकार जब वह अपनी पत्नी के साथ रहने को आता था तब उसे सास के साथ प्रतिबन्धित व्यवहारों का पालन करना पड़ता था।

लोवी के अनुसार, पुत्रवधू अन्य परिवारों से आने के कारण पति के परिवार से अलग तरह के सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। परिवार में अन्य सदस्यों को उसके प्रभाव से बचाने हेतु ही पुत्र-वधू एवं सास-ससुर परिहार उत्पन्न हुआ।

फ्रेजर के अनुसार, फ्रेजर परिहार का कारण निषिद्ध यौन-सम्बन्धों को मानते हैं। उनका मानना है कि कहीं उन लोगों में यौन-सम्बन्ध न बन जायें जो निकट सम्बन्धी हैं तथा जिनमें यौन-सम्बन्धों की अनुमति नहीं है, इसलिए ही भाई-बहिन तथा सास-दामाद परिहार विकसित हुआ।

फ्रॉयड का मत है कि, लड़के और लड़की में विपरीत लिंगीय माता-पिता के प्रति यौन इच्छा बचपन से ही विद्यमान होती है। इस भावना को विकसित होने से रोकने के लिए परिहार प्रथा का प्रचलन हुआ।

टर्नी हाई का मत है कि, परिवार में शान्ति बनाये रखने के लिए परिहार को आवश्यक मानना चाहिए। सास और पुत्र-वधू की भूमिकाओं में संघर्ष की सम्भावना हो सकती है। सास-ससुर की सत्ता और पति के अधिकारों के मध्य टकराव उत्पन्न हो सकता है। इन तनावों से मुक्ति पाने के लिए ही पुत्र-वधू, दामाद और सास-ससुर परिहार को रखा जाता है।

2. परिहास के सम्बन्ध (Joking Relations)—नातेदारी व्यवस्था में परिहास सम्बन्ध परिहार से ठीक विपरीत है। इसमें सम्बन्धों की घनिष्ठता होती है। परिहास में दो रिश्तेदारों में एक-दूसरे से हँसी-मजाक, गाली-गलौज, एक-दूसरे की सम्पत्ति को हानि पहुँचाना, इत्यादि का समावेश होता है। ऐसे व्यवहार मुख्यत: विवाह सम्बन्धियों के मध्य पाये जाते हैं। ये सम्बन्ध विभिन्न रिश्तेदारों के मध्य पाये जाते हैं; **जैसे**—जीजा-साली परिहास, जीजा-साला परिहास, देवर-भाभी परिहास, ननद-भाभी परिहास, मामी-भानजा परिहास, मामा-भानजा परिहास, दादा-पोती परिहास, दादी-पोता परिहास, चाचा-भतीजा परिहास, फूफा-भतीजी परिहास इत्यादि। कई समाजों में जीजा-साली, जीजा-साला, देवर-भाभी, ननद-भाभी के मध्य परिहास सम्बन्ध प्रचलित हैं। ऐसे समाजों में हँसी-मजाक ही नहीं अपितु कभी-कभी यौन सम्बन्ध भी बन जाते हैं। **अरापोह** समाज में जीजा-साली में से कोई भी यदि देर तक सोता रहे तो जागने वाला सोने वाले पर ठण्डा पानी डाल सकता है।

विभिन्न आदिम समाजों में दादी-पोता में परिहास पाया जाता है। शरतचन्द्रराय ने उरांव जनजाति में दादी-पोते के मध्य विवाह का वर्णन किया है। बेरियर एल्विन ने भी बैगा जनजाति में पोता-दादी विवाह का वर्णन किया है। उत्तरी भारत की चमार जाति में दादा-पोती के विवाह का वर्णन मिलता है और ऐसे विवाह से सन्तान भी उत्पन्न हुई है। पैंटीकोस्ट द्वीप में दादा-पोती और दादी-पोता विवाह प्रचलित रहा है।

परिहास सम्बन्धों के कारणों का वर्णन अलग-अलग तरह से किया जाता है।

जब परिहास दोनों तरफ से न होकर एक-तरफा होता है तो यह सामाजिक नियन्त्रण और सुधार की दृष्टि से होता है। **रैडक्लिफ ब्राउन** ने लिखा है कि "परिहास सम्बन्ध एक ऐसी मित्रता का प्रतीक हैं जिसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार के रूप में प्रकट किया जाता है। एक-दूसरे को गाली-गलौज, मारपीट इत्यादि दिखावटी शत्रुता है। मामा-भानजे में परिहास सम्बन्ध को विवाह सम्बन्धी कुलांशों के मध्य सम्भाव्य वैमनस्य को मिटाने का एक साधन माना गया है। चेपाल और कून इस परम्परा को कुछ व्यक्तियों के मध्य अन्त:क्रिया बढ़ाने हेतु एक उत्प्रेरक के रूप में मानते हैं। डॉ. रिवर्स का मानना है कि परिहास के सम्बन्ध ममेरे, फुफेरे, विवाह सम्बन्धों के कारण उत्पन्न हुए हैं। वेस्टरमार्क का मानना है कि जिन व्यक्तियों में परिहास सम्बन्ध होते हैं, उनमें आपसी समानता और इतनी घनिष्ठता रही है कि वे कभी विवाह भी कर लेते थे, जैसे—जीजा-साली परिहास साली विवाह का और देवर-भाभी परिहास देवर विवाह का सूचक है।

3. माध्यमिक सम्बोधन (Teknonymy)—बहुत-से समाजों में ऐसे नियम हैं जहाँ सम्बन्धी को उसके नाम से बुलाना मना है। उन्हें बुलाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को माध्यम बनाया जाता है। इसलिए उसे माध्यमिक सम्बोधन कहा जाता है। **उदाहरणार्थ,** भारतीय समाज में प्राय: एक स्त्री अपने

पति को सम्बोधित करने के लिए बच्चों के नाम को माध्यम बनाती है; **जैसे**—सोनू के पिताजी, सीमा की माताजी इत्यादि। टॉयलर ने सबसे पहले माध्यमिक सम्बोधन शब्द का मानवशास्त्रीय साहित्य में प्रयोग किया। इस प्रथा का प्रचलन टॉयलर, फ्रेजर, लोबी इत्यादि ने दुनिया के अलग-अलग भागों में पाया। भारत, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, पश्चिमी कनाडा, चीन, न्यूगिनी, मलाया, अण्डमान, मलैनेशिया, उत्तरी साइबेरिया, ब्रिटिश कोलम्बिया, श्रीलंका इत्यादि प्रदेशों में रहने वाली विभिन्न जनजातियों में यह प्रथा प्रचलित है।

टॉयलर माध्यमिक सम्बोधन की रीति की उत्पत्ति को मातृसत्तात्मक परिवारों के कारण मानते हैं। इस तरह के परिवारों में स्त्रियों की प्रधानता और सर्वोच्च सत्ता थी। पति बाहर का व्यक्ति होने के कारण उसकी परिवार में उच्च स्थिति नहीं थी, इसलिए उसे द्वितीयक सम्बन्धी कहा गया। इसीलिए स्त्री उसे बुलाने के लिए बच्चों को माध्यम बनाती थी। इस रीति का जब व्यापक प्रसार हुआ तो पति भी अपनी पत्नी को बच्चों के माध्यम से बुलाने लगा।

लोवी इस मत को नहीं मानते हैं क्योंकि अगर मातृसत्तात्मक परिवार ही इस प्रथा का कारण है तो ऐसी स्थिति में पितृसत्तात्मक परिवारों में इसका प्रचलन क्यों है? वस्तुतः इस प्रथा के प्रचलन के अन्य कारण भी हैं। कुछ समाजों में इसका कारण स्त्रियों की निम्न सामाजिक स्थिति है तो कुछ अन्य समाजों में पुरुषों की निम्न स्थिति है। विभिन्न समाजों में विकसित भाषा की कमी के कारण और शब्दों की कमी के कारण अलग-अलग सम्बन्धियों को बुलाने के लिए अलग-अलग सम्बन्ध संज्ञाओं की कमी ने इस प्रथा को जन्म दिया।

4. मातुलेय (Avunculate)—यह प्रथा मातृसत्तात्मक परिवारों में होती है। जहाँ पर मामा अपने भांजे-भांजियों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, पिता से अधिक मामा का दायित्व होता है। भांजों की वफादारी पर मामा का विशेष अधिकार होता है, सम्पत्ति भी मामा से भांजे को हस्तान्तरित की जाती है, भांजे पिता की बजाय मामा का कार्य करते हैं। इस तरह अगर सभी पुरुष सम्बन्धियों की तुलना में मामा का भांजे और भांजियों के लिए सर्वप्रमुख स्थान हो, तब उस प्रथा को मातुलेय कहा जाता है और मामा की ऐसी सत्ता को मातुल सत्तात्मकता कहा जाता है।

हैदा और ट्रोब्रियाण्डा जनजाति में 10-12 वर्ष की आयु में लड़का अपने मामा के घर चला जाता है, वहीं पर वह मामा की सेवा करता है। वह मामा के गोत्र, धर्म, सम्पत्ति इत्यादि का अधिकारी होता है।

होपी और जूनी जनजाति म पुत्र विवाह के योग्य होने तक अपने पिता के घर रहता है, उसके पश्चात् मामा के घर चला जाता है। मामा को ही उसका विवाह करवाने का अधिकार होता है। विवाह के पश्चात् वह मामा के ही परिवार का सदस्य बन जाता है। कहीं-कहीं पर भांजे और पुत्र में संघर्ष भी देखने को मिलता है। ट्रोब्रियाण्डा द्वीप में मैलिनोवस्की ने इसी तरह के संघर्ष का वर्णन किया है। यदि कभी किसी पिता का अपने पुत्र के साथ अधिक लगाव हो जाता है, तो वह भांजे के बजाय अपने पुत्र को ही सम्पत्ति प्रदान करना चाहता है। इस प्रथा का प्रचलन पितृसत्तात्मक कोमांचे एवं थोंगा जनजातियों में देखने को मिलता है।

5. पितृश्वश्रेय (Amitate)—जब पितृसत्तात्मक परिवारों में भतीजे-भतीजियों के जीवन में बुआ का विशेष स्थान होता है, तब उसे पितृश्वश्रेय कहा जाता है। इस प्रथा में पिता की बहन बुआ का अत्यधिक महत्व होता है। **डॉ. रिवर्स** ने बैक्सद्वीप में इस प्रथा का प्रचलन देखा। वहाँ बुआ ही भतीजे के लिए वधू ढूँढ़ती है, भतीजा माँ से अधिक बुआ का सम्मान करता है और वही बुआ की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। भारत में टोडा जनजाति में बुआ ही बच्चे का नामकरण करती है। कुछ जनजातियों में दाह-संस्कार की क्रिया भी बुआ ही करती है। दक्षिणी अफ्रीका की जनजातियों में भी बुआ के सम्मान की यह प्रथा प्रचलित है। **चैपल** और **कून** का मत है कि जिन सम्बन्धियों से विवाह के पश्चात् सामाजिक अन्तःक्रिया शिथिल होने की सम्भावना होती है, उन्हें सतत् बनाये रखने हेतु इस प्रथा का प्रचलन हुआ है। बुआ विवाह के पश्चात् दूसरे परिवार में चली जाती है। अतएव अपने जन्म के से सम्पर्क बनाये रखने हेतु ही पितृश्वश्रेय प्रथा का प्रचलन शुरू हुआ।

6. सहकष्टी (Couvade)—यह प्रथा प्रसवकाल से सम्बन्धित है। कुछ जनजातियों में ऐसी प्रथा है कि जब पत्नी के सन्तान होने वाली हो तब पुरुष को उन समस्त निषेधों का पालन करना पड़ता है जिनका पालन उसकी पत्नी करती है। वह भी उसी तरह की समस्याओं को झेलता है, जो कष्ट और समस्याएँ प्रसवा को होती हैं। वह भी पथ्य का भोजन करता है, उसे भी प्रसवा पत्नी के कमरे में रखा जाता है और उसे प्रसवा की भाँति ही अछूत माना जाता है। भारत में यह परम्परा खासी एवं टोडा जनजाति में प्रचलित है। एक खासी पति को पत्नी की भाँति नदी पार करने और वस्त्र धोने की उस समय तक मनाही रहती है जब तक कि सन्तान होने के बाद देवी-देवताओं की पूजा-आराधना नहीं कर ली जाती।

इस प्रथा के प्रचलन के कारणों का वर्णन करते हुए मानवशास्त्रियों ने अलग-अलग तर्क दिए हैं। कुछ विद्वानों ने इसे मातृ-पितृ संकुल की संक्रमण अवस्था के अवशेष के रूप में माना है। मैलिनोवस्की ने सह-प्रसविता को वैवाहिक सम्बन्धों को अत्यन्त सुदृढ़ बनाने व पैतृक प्रेम पाने का एक सामाजिक क्रिया तन्त्र माना है। रेगलन इसको विवाह नामक संस्था के उद्विकास का सहयोगी कारण मानते हैं।

कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि प्रसव के समय स्त्री के शरीर में कुछ रासायनिक गतिविधियाँ ऐसी होती हैं, जोकि उसके आस-पास के वातावरण को प्रभावित करती हैं। **उदाहरण के लिए,** जिस कमरे में वह रहती है, उसमें रहने वाले अन्य व्यक्ति भी बीमार हो जाते हैं। इस प्रकार सह-प्रसविता की रीति अन्धविश्वास पर नहीं अपितु ठोस तथ्य पर आधारित है। कुछ एक जनजातियों में इस प्रथा के प्रचलन का कारण माता और पिता पर प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें जादू-टोने के कुप्रभाव से बचाकर रखना है कि नवजात शिशु अच्छी तरह से जन्म ले सके।

डॉ. दुबे के अनुसार, "इस प्रथा का प्रचलन सामाजिक पितृत्व निर्धारण करने के लिए हुआ होगा। बहुपति विवाही और मातृसत्तात्मक परिवारों में जहाँ सन्तान का जैविकीय पिता प्रायः अज्ञात ही होता था वहाँ वही व्यक्ति सन्तान का पिता माना जाता जो सहकष्टी रीति का पालन करता था।

नातेदारी की श्रेणियाँ (Categories of Kinship)

जनजाति समाज में नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन में नातेदारी की श्रेणियों का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। विभिन्न नातेदारी के मध्य सम्पर्क, निकटता, घनिष्ठता एवं अपनत्व के आधार पर नातेदारों को विभिन्न श्रेणी में बाँटा जा सकता है। कुछ लोगों के साथ प्रत्यक्ष तथा निकट सम्बन्ध होते हैं इसके अन्तर्गत विवाह एवं रक्त सम्बन्धी आते हैं इन्हें प्राथमिक सम्बन्धी कहा जाता है। **डॉ. श्यामाचरण दुबे** जिन्होंने जनजाति समाज का विशिष्ट अध्ययन किया है उनके अनुसार प्राथमिक सम्बन्धियों के अन्तर्गत पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मामा-पुत्री, पिता-पुत्री, भाई-बहिन इस प्रकार कुल आठ प्रकार की सम्बन्ध शृंखला को बताया गया है। इसके अतिरिक्त द्वितीय सम्बन्ध वे सम्बन्धी होते हैं जो प्राथमिक सम्बन्धों के प्राथमिक सम्बन्ध होते हैं अर्थात् जिनसे हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता अपितु अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है इन्हें द्वितीयक श्रेणी में रखा जाता है **उदाहरण के लिए** सास-दामाद, जीजा-साला, देवर-भाभी, ननद-भाभी आदि।

इसी प्रकार तृतीय सम्बन्धी वे सम्बन्धी होते हैं जो प्राथमिक सम्बन्धी के द्वितीय सम्बन्धी होते हैं या द्वितीय सम्बन्धी के प्राथमिक सम्बन्धी होते हैं **उदाहरणस्वरूप,** दादा-परपोता, दादी-परपोता आदि। **मरडाक महोदय** ने नातेदारी की श्रेणियों का गहन अध्ययन किया है और तीन श्रेणी वर्गीकृत किया है—प्राथमिक सम्बन्ध 8, द्वितीयक सम्बन्ध 33 और तृतीयक सम्बन्ध 151 प्रकार के हो सकते हैं।

सम्बन्ध संज्ञाएँ (Kinship Terms)

एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों से सम्बन्ध को स्पष्ट एवं परिभाषित रूप से व्यक्त करने हेतु विभिन्न तरह के सम्बन्धों के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न समाजों में व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों के सूचक विभिन्न शब्दों के प्रयोग किये जाते हैं। सर्वप्रथम **मार्गन महोदय** द्वारा नातेदारी के अन्तर्गत इन सम्बन्ध संज्ञाओं का विस्तृत अध्ययन किया गया तथा इन्हें दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—प्रथम वर्गीकृत संज्ञाएँ (Classificatory Kinship Terms) और द्वितीय विशिष्ट या वर्णनात्मक सम्बन्ध संज्ञाएँ (Particularizing or Descriptive Kinship Terms)।

5 जनजातीय विवाह [TRIBAL MARRIAGE]

विवाह एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्था है, जो कुछ मान्यता प्राप्त नियमों के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष को यौनिक सन्तुष्टि देने के साथ ही बच्चों के पालन-पोषण और नियमित सामाजिक जीवन के लिए एक समुचित पर्यावरण की सुविधा देती है। मनुष्य की जैविकीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जरूरतों को पूर्ण करने में विवाह का महत्व इतना ज्यादा है कि संसार में कोई भी समाज का संस्था के बिना स्वयं को संगठित नहीं रख सकता। यह संस्था यूरोप व अमेरिका जैसे विकसित समाजों के लिए जितनी जरूरत है, उतनी ही जरूरत ध्रुव प्रदेशों एवं दूर-दूर तक फैले हुए द्वीपों में रहने वाली जनजातियों के लिए भी है। इस स्थिति में यह जरूरी है कि हम विवाह जैसी संस्था को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझकर इससे सम्बन्धित कई स्वरूपों और रीति-रिवाजों को स्पष्ट करने का प्रयास करें।

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि विवाह एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्था है, जो एक स्त्री-पुरुष को कुछ विशेष नियमों के अन्तर्गत यौन सम्बन्ध स्थापित करने की अनुमति प्रदान करती है और परिवार में व्यक्ति के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक अधिकारों व कर्तव्यों का निर्धारण करती है।

विवाह की परिभाषाएँ
(DEFINITIONS OF MARRIAGE)

मजूमदार एवं **मदान** के शब्दों में, "विवाह संस्था का सम्बन्ध एक विशेष सामाजिक स्वीकृति अथवा मान्यता से है, जो सामान्यत: कानूनी या धार्मिक संस्कार के रूप में होती है और जो विषम लिंग के दो व्यक्तियों को यौनिक सम्बन्ध स्थापित करने व उनसे सम्बन्धित सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्धों का उन्हें अधिकार देती है।"

डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स के शब्दों में, "जिन साधनों द्वारा मानव-समाज यौन सम्बन्धों का नियमन करता है, उन्हें विवाह की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।"

लूसी मेयर विवाह को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "विवाह की परिभाषा यह है कि वह स्त्री-पुरुष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से जन्मा हुआ बच्चा माता-पिता की वैध सन्तान माना जाये।"

वेस्टरमार्क के शब्दों में, "विवाह एक अथवा अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें विवाह करने वाले व्यक्तियों के एवं उससे पैदा हुए सम्भावित बच्चों के एक-दूसरे के प्रति होने वाले अधिकारों और कर्तव्यों का समावेश होता है।"

विवाह की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF MARRIAGE)

विवाह की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. विवाह शब्द का प्रयोग सामान्यत: एक सामाजिक संस्था के रूप में किया जा सकता है।
2. यह संस्था दो विषम लिंग के व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों का अधिकार जरूर देती है, किन्तु इसके साथ ही उनसे यह उम्मीद भी करती है कि वह कुछ नियमों का पालन करते हुए इस अधिकार का प्रयोग करेंगे।

3. विवाह केवल यौन-सम्बन्धों पर ही आधारित नहीं है, अपितु इसे एक आर्थिक संस्था भी कह सकते हैं। यह इस दृष्टिकोण से कि विवाह का प्रभाव पति-पत्नी के सम्पत्ति-अधिकारों पर भी पड़ता है।
4. विवाह का कार्य एक नवजात शिशु की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करना भी है। इस कार्य का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक व्यवस्था में अवैध रूप से जन्म लेने वाले बच्चों को उतना सम्मान नहीं मिल पाता जितना कि वैध सन्तानों को मिलता है।
5. विवाह केवल तभी वैध अथवा मान्य होता है जब दोनों पक्षों के मध्य विवाह सम्बन्धों की स्थापना किसी प्रथा या कानून के अनुसार हो।
6. कई समाजों में विवाह की विधियाँ अलग-अलग हो सकती हैं। इसका कारण अलग-अलग समाजों की प्रथाओं, सांस्कृतिक विशेषताओं एवं कानूनों में अन्तर होना है।

विवाह के उद्देश्य
(OBJECTIVES OF MARRIAGE)

विवाह मनुष्य समाज की एक सर्वव्यापी विशेषता है, किन्तु कई समाजों के अलग सामाजिक मूल्यों व संस्कृति के कारण विवाह के उद्देश्य में भी कुछ भिन्नता पायी जाती है। इस आधार पर विवाह के चार प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. घर की स्थापना,
2. यौन इच्छाओं की पूर्ति,
3. आर्थिक सहयोग एवं भावनात्मक सम्बन्ध,
4. बच्चों के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था।

यहाँ यह ध्यान रखना जरूरी है कि विवाह के उपर्युक्त चारों उद्देश्य समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, किन्तु कई समाजों में इनकी प्राथमिकता के क्रम में भिन्नता पायी जाती है; जैसे—जटिल एवं भौतिकवादी संस्कृति से सम्बन्धित समाजों में यौन सम्बन्ध और बच्चों के जन्म को कानूनी रूप देना प्रमुख उद्देश्य है। वहीं सरल एवं जनजातीय समाजों में विवाह का उद्देश्य यौन सम्बन्धों के अधिकार ही नहीं अपितु दो परिवारों या दो समूहों के सम्बन्धों को दृढ़ बनाना होता है। इस दृष्टिकोण से भी यौन सम्बन्धों के अधिकारों को प्राप्त करना विवाह का सबसे प्रमुख उद्देश्य नहीं कहा जा सकता है।

कई आदिवासी समाजों में बहुपति विवाह का प्रचलन है, जिसके कारण यह जानना काफी मुश्किल हो जाता है कि बच्चे का वास्तविक पिता कौन है। ऐसी स्थिति में बच्चे के पितृत्व का निर्धारण कुछ विशेष सामाजिक प्रथाओं व अनुष्ठानों द्वारा किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बच्चों को वैध रूप प्रदान करना भी विवाह का मुख्य उद्देश्य नहीं हो सकता, क्योंकि कुछ प्रथाओं, संस्कारों, अनुष्ठानों की मदद से भी वैध रूप प्रदान किया जा सकता है। इस स्थिति में केवल परिवार की स्थापना करना ही विवाह का सर्वप्रमुख उद्देश्य रह जाता है। यह सत्य है कि व्यक्तिगत विवाह के बिना भी अपनी यौन इच्छा को पूर्ण कर सकता है किन्तु यह कार्य न तो नैतिक है और न ही इससे व्यक्तित्व का समुचित विकास सम्भव है। इसका अर्थ यह है कि व्यक्तित्व का समुचित विकास करना और व्यक्ति को मानसिक सुरक्षा देना भी विवाह का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

मरडॉक के शब्दों में, दोनों पक्षों के मध्य आर्थिक सहयोग तथा सन्तानों के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था प्रमुख हैं। जनजातीय समाजों के विषय में विवाह का आर्थिक उद्देश्य इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इसकी कमी में विवाह सम्बन्धी कई रीति-रिवाजों व कर्तव्यों को नहीं समझा जा सकता। सभ्य समाजों में विवाह के द्वारा व्यक्ति को अपने धार्मिक कर्तव्यों से भी अवगत कराया जाता है। किन्तु अधिकतम जनजातियों में विवाह का धार्मिक उद्देश्य ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। इसके बाद भी विवाह के विविध उद्देश्यों से इतना जरूर स्पष्ट होता है कि यह उद्देश्य मूलतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक हैं।

विवाह सम्बन्धी नियमों की प्रकृति
(NATURE OF MARRIAGE LAWS)

परिवार एवं विवाह यौन व्यवहारों को नियन्त्रित व नियमित करते हैं। हर एक समाज में ऐसे कुछ नियम होते हैं, जो विशेष समूह अथवा नातेदारों में विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—

1. निकटाभिगमन

माता-पिता और सन्तान व भाई-बहिनों में यौन सम्बन्ध सभी समाजों में निषिद्ध माने गये हैं। अगर इन प्राथमिक सम्बन्धियों में यौन सम्बन्ध स्थापित करने की मान्यता होती तो परिवार, विवाह और नातेदारी से सम्बन्धित विभिन्न व्यापक व्यवस्थाएँ अनावश्यक हो जातीं। प्राचीन समय में मिस्र, फारस, पेरू, हवाई द्वीप, इनका एवं कांगों की कुछ जातियों में इस प्रथा का अवश्य प्रचलन था, लेकिन यह राज-परिवारों तक ही केवल सीमित थी। इन लोगों का कहना था कि ऐसे विवाह से रक्त की शुद्धता बनी रहती है और परिवार के बाहर विवाह करने पर शाही रक्त अशुद्ध हो जायेगा। इस प्रकार उच्च राजा वह माना जाता जो भाई-बहिन के आपस में विवाह से उत्पन्न होता। मिस्र देश में शाही परिवार के लोग अपनी पुत्रियों से विवाह कर लेते थे। इन अपवादों को छोड़कर निकटाभिगमन या अगम्यगमन को कहीं भी प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इडिपस नामक राजा ने अनजाने में अपनी माता के साथ यौन व्यवहार की क्रिया की तो वह इतना उद्विग्न हो गया कि उसने अपनी आँखें तक फोड़ लीं। एलिजाबेथ के समय में नाटककार दुष्ट पात्रों पर निकटाभिगमन का आरोप लगाते थे।

मुरडॉक के अनुसार, "अगर इसके सहभागी एक-दूसरे के वास्तविक, काल्पनिक अथवा कृत्रिम नातेदारी के बन्धनों से ऐसे बँधे हुए हैं कि उनके यौन सम्बन्ध सांस्कृतिक रूप से अमान्य हैं, तो यह निकटाभिगमन की ही श्रेणी में आता है।"

रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "उचित शब्दों में कहें तो निकटाभिगमन यौन सम्बन्धी पाप अथवा अपराध है, जो परिवार के निकट सम्बन्धियों **जैसे**—पिता-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहिन के मध्य यौन सम्बन्धों के कारण उत्पन्न होता है।

2. बहिर्विवाह (Exogamy)

बहिर्विवाह का अर्थ 'समूह के बाहर विवाह' करने से है। बहिर्विवाह वह नियम है जिसके अनुसार एक व्यक्ति को एक विशेष समूह के बाहर विवाह करने का आदेश दिया जाता है। अधिकतम परिवार गोत्र, टोटम समूह, गाँव, एवं भ्रातृ दल इत्यादि से बाहर विवाह करने की प्रथा प्रचलित है। कहीं-कहीं पर युग्म संगठन भी बहिर्विवाह समूह के रूप में देखने को मिलते हैं। **रिवर्स** के शब्दों में, "बहिर्विवाह से उस विनिमय का ज्ञान होता है जिसमें एक सामाजिक समूह के सदस्य के लिए यह जरूरी होता है कि वह दूसरे सामाजिक समूह से अपना जीवन साथी ढूँढ़े।"

3. अन्तर्विवाह (Endogamy)

अन्तर्विवाह का अर्थ 'समूह के अन्दर विवाह करने से है। अन्तर्विवाह वह प्रथा है, जिसके अनुसार व्यक्ति अपने समूह के भीतर ही विवाह करता है। यह एक सामाजिक नियम है, जो यह अपेक्षा रखता है कि व्यक्ति अपने सामाजिक समूह से विवाह सम्पन्न करें, जिसका कि वह सदस्य है। अन्तर्विवाही समूह के रूप में कोई भी वंश, गोत्र, युग्म संगठन, उपजाति, जनजाति अथवा कोई भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोग हो सकते हैं।

डॉ. रिवर्स के अनुसार, "अन्तर्विवाह का अर्थ उस विनिमय से है जिससे अपने समूह में से विवाह साथी चुनना आवश्यक होता है।"

अन्तर्विवाह के नियम के लिए विभिन्न कारण उत्तरदायी हैं–

(i) जनजातियों में सामूहिकता की भावना तीव्र पायी जाने के कारण वर-वधू का चुनाव अपने समूह से ही किया जाता है। इससे उन्हें एक मानसिक लगाव महसूस होता है तथा इससे बाह्य समूह में विवाह करने में होने वाली अपरिचितता का डर नहीं रहता है।

(ii) अपने समूह को शक्तिशाली बनाये रखने हेतु और अपने समूह में अन्य समूह से अन्तःक्रिया को नियन्त्रित करने व सामुदायिक एकता को बनाये रखने हेतु भी जनजातियों में अन्तर्विवाह किया जाता है।

(iii) जनजाति में अन्तर्विवाह की प्रथा सांस्कृतिक विरासत की रक्षा हेतु भी प्रचलित है।

(iv) अन्य समूह में विवाह करने से सम्पत्ति के बाहरी समूह में हस्तान्तरित होने, तथा अपने खेत, पशु, घर व भूमि के हस्तान्तरण को नियन्त्रित करने के लिए भी अन्तर्विवाह किया जाता है।

जनजातियों में अधिमान्य विवाह
(PREFERENTIAL MARRIAGE AMONG TRIBES)

आदिम जनजातियों में विवाह की विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित रही हैं। विवाह से न सिर्फ दो व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है, अपितु दो परिवारों के मध्य भी सम्बन्ध बनता है। दोनों परिवार एक-दूसरे के प्रति विभिन्न अवसरों पर अधिकारों और जिम्मेदारियों को निभाते हैं। विवाह से दोनों परिवारों में बहुत-से नये रिश्ते बनते हैं, ये रिश्ते एक-दूसरे पर कुछ अधिकार और दायित्व भी डालते हैं जिन्हें दोनों परिवारों के सदस्यों को निभाना होता है।

उदाहरणार्थ, ट्रोब्रियाण्डा द्वीप के लोगों में भाई का यह कर्तव्य होता है कि वह पूरे वर्ष में केवल एक बार बहिन के पति को फसल में से कुछ हिस्सा भेंट करे। हिन्दू लोगों में बहिन के पुत्र अथवा पुत्री के विवाह के अवसर पर भाई उनके तथा उनके परिवार के सदस्यों के लिए वस्त्र, आभूषण और नकद पैसा देता है। इसे 'भात भरना' कहते हैं। इसी तरह से इन दो परिवारों में जीवन-साथी को चुनने से सम्बन्धित कुछ प्राथमिकताएँ पायी जाती हैं। इनके अनुसार एक व्यक्ति का विवाह एक विशेष सम्बन्धी से होना अधिक पसन्द किया जाता है। जब विवाह साथी का चयन करते समय एक वर्ग विशेष को ही दूसरे की तुलना में प्राथमिकता प्रदान की जाती है, तो ऐसे विवाह को 'अधिमान्य विवाह' के नाम से जाना जाता है।

लूसी मेयर के शब्दों में, "यदि वांछनीय हो कि कोई व्यक्ति एक विशेष वर्ग के व्यक्ति से ही विवाह करे, तो उसे अधिमान्य विवाह कहा जाता है।"

अधिमान्य विवाह को निम्न तीन वर्गों में विभक्त करके समझा जाता है–

1. ममेरे एवं फुफेरे भाई-बहनों का विवाह (Cross Cousin Marriage)

ममेरे एवं फुफेरे भाई-बहनों के विवाह को विलिंग सहोदर विवाह भी कहते हैं। इस तरह के विवाह विलिंग सहोदरजों की सन्तानों से होते हैं। अगर पुरुष अपने मामा की लड़की से विवाह करता है तो उसे मातृपक्षीय विलिंग सहोदर विवाह कहा जायेगा। अगर वह अपनी बुआ की लड़की से विवाह करता है तो उसे पितृ पक्षीय सहोदर विवाह कहा जायेगा। पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया और लेकआयर में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी माता की लड़की से विवाह करने का पूर्ण अधिकार था। पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया की करियेरा जनजाति में और फिजी द्वीप में भी ऐसे विवाह प्रचलित थे। ऐसे विवाहों में आयु सम्बन्धी कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं होता। गिल्याक, कामचड़ल और टुंगस इत्यादि दक्षिणी एशियाई जनजातियों में ममेरी बहिन से विवाह करने की प्रथा है। उत्तरी म्यांमार की पहाड़ियों में निवास करने वाली कचिन तथा पुरुम जनजातियों में पत्नी माता के कुल से ही प्राप्त की जाती है। भारत में मणिपुर के पुरूम कुकियों, गोंड जनजाति में और खरिया, ओरांव, कदार, असम की मिकीर एवं भीलों में भी इस तरह के विवाह के लिए तैयार न हो तो उसे दूसरे पक्ष को हर्जाना देना होता है। गोंड लोग इस विवाह को 'दूध लौटावा' कहते हैं।

अन्तर्विवाह के नियम के लिए विभिन्न कारण उत्तरदायी हैं–

(i) जनजातियों में सामूहिकता की भावना तीव्र पायी जाने के कारण वर-वधू का चुनाव अपने समूह से ही किया जाता है। इससे उन्हें एक मानसिक लगाव महसूस होता है तथा इससे बाह्य समूह में विवाह करने में होने वाली अपरिचितता का डर नहीं रहता है।

(ii) अपने समूह को शक्तिशाली बनाये रखने हेतु और अपने समूह में अन्य समूह से अन्तःक्रिया को नियन्त्रित करने व सामुदायिक एकता को बनाये रखने हेतु भी जनजातियों में अन्तर्विवाह किया जाता है।

(iii) जनजाति में अन्तर्विवाह की प्रथा सांस्कृतिक विरासत की रक्षा हेतु भी प्रचलित है।

(iv) अन्य समूह में विवाह करने से सम्पत्ति के बाहरी समूह में हस्तान्तरित होने, तथा अपने खेत, पशु, घर व भूमि के हस्तान्तरण को नियन्त्रित करने के लिए भी अन्तर्विवाह किया जाता है।

जनजातियों में अधिमान्य विवाह
(PREFERENTIAL MARRIAGE AMONG TRIBES)

आदिम जनजातियों में विवाह की विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित रही हैं। विवाह से न सिर्फ दो व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है, अपितु दो परिवारों के मध्य भी सम्बन्ध बनता है। दोनों परिवार एक-दूसरे के प्रति विभिन्न अवसरों पर अधिकारों और जिम्मेदारियों को निभाते हैं। विवाह से दोनों परिवारों में बहुत-से नये रिश्ते बनते हैं, ये रिश्ते एक-दूसरे पर कुछ अधिकार और दायित्व भी डालते हैं जिन्हें दोनों परिवारों के सदस्यों को निभाना होता है।

उदाहरणार्थ, ट्रोब्रियाण्डा द्वीप के लोगों में भाई का यह कर्तव्य होता है कि वह पूरे वर्ष में केवल एक बार बहिन के पति को फसल में से कुछ हिस्सा भेंट करे। हिन्दू लोगों में बहिन के पुत्र अथवा पुत्री के विवाह के अवसर पर भाई उनके तथा उनके परिवार के सदस्यों के लिए वस्त्र, आभूषण और नकद पैसा देता है। इसे 'भात भरना' कहते हैं। इसी तरह से इन दो परिवारों में जीवन-साथी को चुनने से सम्बन्धित कुछ प्राथमिकताएँ पायी जाती हैं। इनके अनुसार एक व्यक्ति का विवाह एक विशेष सम्बन्धी से होना अधिक पसन्द किया जाता है। जब विवाह साथी का चयन करते समय एक वर्ग विशेष को ही दूसरे की तुलना में प्राथमिकता प्रदान की जाती है, तो ऐसे विवाह को 'अधिमान्य विवाह' के नाम से जाना जाता है।

लूसी मेयर के शब्दों में, "यदि वांछनीय हो कि कोई व्यक्ति एक विशेष वर्ग के व्यक्ति से ही विवाह करे, तो उसे अधिमान्य विवाह कहा जाता है।"

अधिमान्य विवाह को निम्न तीन वर्गों में विभक्त करके समझा जाता है–

1. ममेरे एवं फुफेरे भाई-बहनों का विवाह (Cross Cousin Marriage)

ममेरे एवं फुफेरे भाई-बहनों के विवाह को विलिंग सहोदर विवाह भी कहते हैं। इस तरह के विवाह विलिंग सहोदरजों की सन्तानों से होते हैं। अगर पुरुष अपने मामा की लड़की से विवाह करता है तो उसे मातृपक्षीय विलिंग सहोदर विवाह कहा जायेगा। अगर वह अपनी बुआ की लड़की से विवाह करता है तो उसे पितृ पक्षीय सहोदर विवाह कहा जायेगा। पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया और लेकआयर में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी माता की लड़की से विवाह करने का पूर्ण अधिकार था। पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया की करियेरा जनजाति में और फिजी द्वीप में भी ऐसे विवाह प्रचलित थे। ऐसे विवाहों में आयु सम्बन्धी कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं होता। गिल्याक, कामचड़ल और टुंगस इत्यादि दक्षिणी एशियाई जनजातियों में ममेरी बहिन से विवाह करने की प्रथा है। उत्तरी म्यांमार की पहाड़ियों में निवास करने वाली कचिन तथा पुरुम जनजातियों में पत्नी माता के कुल से ही प्राप्त की जाती है। भारत में मणिपुर के पुरूम कुकियों, गोंड जनजाति में और खरिया, ओरांव, कदार, असम की मिकीर एवं भीलों में भी इस तरह के विवाह के लिए तैयार न हो तो उसे दूसरे पक्ष को हर्जाना देना होता है। गोंड लोग इस विवाह को 'दूध लौटावा' कहते हैं।

2. मौसेरे-चचेरे भाई-बहिनों का विवाह (Parallel Cousin Marriage)

चचेरे-मौसेरे भाई-बहिनों के विवाह को सलिंग सहोदर विवाह भी कहते हैं। इस तरह के विवाह में एक ही लिंग के सहोदरों की सन्तानों में विवाह होता है। **उदाहरण के लिए,** दो बहिनों अथवा दो भाइयों के लड़के-लड़कियाँ जब एक-दूसरे से विवाह करते हैं, तो उसे मौसेरे भाई-बहिनों एवं चचेरे भाई-बहिनों का विवाह कहते हैं। अरब की खानाबदोश जनजाति बेडोइन में दो भाइयों के लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे से विवाह करते हैं, क्योंकि यह जनजाति ऊँट-पालन का कार्य करती है। अतएव इस कार्य के लिए और शत्रुओं से रक्षा के लिए समूह में एकता होना आवश्यक है। इस प्रकार परिवार अथवा समूह के समस्त सदस्य संगठन और एकता को बनाये रखने के लिए इसी तरह का विवाह करते हैं। ऐसे विवाह में स्त्री ही दोनों परिवारों को घनिष्ठ सम्बन्धों में बाँधती है। भारतीय जनजातियों में इस तरह के विवाह नहीं होते हैं, क्योंकि दोनों भाई अथवा बहिन एक ही गोत्र अथवा टोटम समूह के सदस्य होते हैं।

3. साली एवं भाभी विवाह (Soroate and Levirate Marriage)

भारत की कई जनजातियों में साली एवं भाभी विवाह को अधिमान्यता विवाह की श्रेणी में रखा जाता है। अगर कोई जनजाति एक-विवाही है, तो पुरुष को अपनी मृत पत्नी की बहिन से विवाह करने की वरीयता दी जाती है। हालाँकि ऐसा विवाह नैतिक रूप से भी सही है। कुछ जनजातियों में एक बार कन्या का मूल्य ले लेने पर लड़की के पिता का यह नैतिक कर्तव्य होता है कि उस लड़की की मृत्यु हो जाने पर उसके पति को वह अपनी दूसरी कन्या को पत्नी रूप में दे दे।

यह प्रथा विशेष रूप से गोंड जनजाति में पायी जाती है। जिन जातियों में कन्या-मूल्य का प्रचलन है, वहाँ किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाने पर उसके छोटे या बड़े भाई अपनी विधवा भाभी से विवाह कर लेते हैं। इसका कारण यह है कि जिस स्त्री को परिवार में लाने के लिए उन्हें कन्या-मूल्य देना पड़ा है, उसको परिवार से किसी प्रकार से अलग करना अनुचित समझा जाता है।

जनजातियों में विवाह के प्रकार
(TYPES OF MARRIAGE IN TRIBES)

मानवशास्त्रियों ने पति-पत्नी की संख्या के आधार पर विवाह के प्रकारों का वर्णन किया है—

1. एकविवाह (Monogamy)

एकविवाह पारिवारिक जीवन का सबसे उत्तम आधार है। **बेस्टरमार्क** का मत है कि परिवार की उत्पत्ति एकविवाह के नियम से ही शुरू हुई है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The History of Human Marriage' में इन्होंने यह स्पष्ट किया है कि विवाह के अन्य समस्त स्वरूप सामाजिक नियमों का एक अस्थाई उल्लंघन मात्र है। एक सर्वव्यापी नियम में अगर सभी सभ्य एवं जनजातीय समाजों में विवाह की कोई प्रथा स्थायी रही है, तो वह एकविवाह की ही प्रथा है। एकविवाह वह नियम है, जिसमें एक जीवन साथी के जीवित रहते हुए कोई महिला या पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकता। भारत की अधिकतम जनजातियों में विवाह का यही नियम है। एकविवाह के कारण या परिस्थितियों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

(i) प्रत्येक समाज में महिला एवं पुरुषों का अनुपात लगभग समान होता है। अगर हर एक महिला व पुरुष को एक से अधिक विवाह करने की अनुमति प्रदान की जाये तो इसका तात्पर्य यह होगा कि कुछ व्यक्तियों को एक जीवन-साथी भी नहीं मिल सकेगा।

(ii) एकविवाह के अलावा विवाह के अन्य समस्त स्वरूपों में व्यक्तियों के मानसिक व संवेगात्मक तनाव इतने ज्यादा बढ़ सकते हैं कि जनजातीय समाज को अपना संगठन बनाये रखना मुश्किल हो जायेगा।

(iii) प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों के मध्य संघर्षों की मात्रा को कम करने का प्रयास करता है। इस उद्देश्य को एक विवाह के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है।

(iv) कुछ जनजातियों में कन्या-मूल्य की बहुलता होने के कारण भी एकविवाह का प्रचलन है, क्योंकि एक व्यक्ति कई पत्नियाँ रखकर सभी की कीमत जटिलता से ही चुका सकता है।

(v) सभ्य समाजों के सम्पर्क में आने के कारण भी जनजातियों में एक एकविवाह का प्रचलन तीव्रता से बढ़ता जा रहा है।

(vi) जनजातीय समाज में काफी समय तक बहुपति व बहुपत्नी विवाह का प्रचलन बने रहने के कारण उनकी पारिवारिक समस्याएँ इतनी बढ़ गयीं कि उनके समाधान के लिए एकविवाह को उपयोगी नियम के रूप में देखा जाने लगा।

लाभ (Merits)

एकविवाह नियम के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

(i) एकविवाह के सम्पूर्ण स्वरूपों अथवा प्रकारों में एकविवाह सर्वाधिक न्यायपूर्ण ही नहीं है, अपितु इसमें महिला-पुरुष के आपसी अधिकार भी सर्वाधिक सुरक्षित रहते हैं।

(ii) एकविवाह से बनने वाले परिवार ज्यादा स्थायी होते हैं क्योंकि उनमें संघर्ष होने की बहुत कम सम्भावना रहती है।

(iii) इस तरह के परिवारों में बच्चों की देखभाल, शिक्षा व अनुशासन का भी सबसे अच्छा प्रबन्ध सम्भव हो पाता है।

(iv) एकविवाह के द्वारा समाज में महिलाओं को उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त होती है। ऐसा इसलिए होता है कि विवाह सम्बन्धी दोनों पक्षों को एक-दूसरे को समझने का काफी अवसर मिल जाता है।

(v) एकविवाह ने मानसिक स्थिरता को बढ़ाने में काफी योगदान दिया है। इसका कारण यह है कि एकविवाह से ही जीवन स्तर में सुधार हो पाता है तथा व्यक्ति अपने साधनों व आवश्यकताओं के मध्य सन्तुलन बना पाता है।

हानियाँ (Demerits)

एकविवाह नियम से निम्नलिखित हानियाँ होती हैं–

(i) एकविवाह के कारण समाज में अनैतिकता सम्बन्धी दोष पैदा हो जाते हैं।

(ii) एकविवाह के कारण व्यक्ति को अपना जीवन कठोर संयम में बिताना कठिन लगता है।

(iii) समाज में यौनिक अपराध बढ़ने लगते हैं।

(iv) एकविवाह एकाधिकारी व्यवस्था की भाँति है और इसमें महिलाओं का शोषण होने की अधिक सम्भावना होती है।

2. बहुपत्नी विवाह (Polygyny)

बहुपत्नी विवाह का अर्थ 'एक पुरुष द्वारा एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना है।' इस तरह के विवाह पर धनी एवं शक्तिशाली व्यक्तियों का ही विशेष अधिकार रहा है। भारत की अधिकतम जनजातियाँ एक कठिन व संघर्षमय प्राकृतिक पर्यावरण में रहकर जीविका उपार्जित करती हैं, इसलिए विवाह की इस प्रथा का प्रचलन उनमें कम देखने को मिलता है। सामान्य रूप से जिन जनजातियों में बहुपत्नी विवाह प्रचलित है, वहाँ की जनजाति के कुछ प्रमुख व्यक्ति ही एक से अधिक पत्नियाँ रखते हैं, क्योंकि उनके लिए एक से अधिक पत्नियों को रखना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होता है। **उदाहरणार्थ**, भारत में कई जनजातियों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है, जैसे–नागा, बैगा, गोंड एवं लुशाई। इन जनजातियों के समस्त वर्गों या गोत्र समूहों में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन नहीं है, अपितु एक अथवा दो वर्गों में ही यह प्रथा प्रचलित है। कुछ समय पूर्व तक जौनसार बाबर की खस जनजाति, नैनीताल की थारू जनजाति व नीलगिरि पहाड़ियों की टोडा जनजाति भी बहुपत्नी विवाह थीं, किन्तु सभ्य समाजों के सम्पर्क में आने के कारण ये जनजातियाँ एकविवाही होती जा रही हैं। छोटा

'हो' जनजाति में बहुपत्नी प्रथा समाप्त होती जा रही है, क्योंकि वे एक-से-अधिक पत्नियों के लिए 'कन्या-मूल्य' देने की स्थिति में नहीं हैं।

सभी जनजातियों में बहुपत्नी विवाह की प्रथा का एक-समान रूप नहीं होता है। कुछ समाजों में बहुपत्नी विवाह की मान्यता पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं होता है, यानी उस समाज में सारे सदस्यों को बहुपत्नी विवाह करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत कुछ समाजों में बहुपत्नी विवाह का अधिकार कुछ शर्तों के साथ ही मिलता है। इसका अर्थ यह है कि यह अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त होता है, जो धनी हों या जिनकी स्थिति बहुत अधिक उच्च हो। जैसे—विश्व में अफ्रीका ही वह भूमि है जहाँ पर यह प्रथा बहुत अधिक फली-फूली है। यहाँ राजा व राजक एक से अधिक पत्नियाँ रख सकते हैं। यहाँ पर अलग-अलग स्त्रियों की सन्तानों को विशेष शब्दों से पुकारते हैं तथा उन्हीं के आधार पर उन्हें पहचाना जाता है कि वे किसकी सन्तान हैं। इससे सगे भाई तथा अर्द्ध भाइयों में अन्तर जाना जा सकता है। युगाण्डा की बगण्डा (Baganda) जनजाति में राजा से लेकर एक सामान्य व्यक्ति तक सभी को एक से अधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार है, जबकि भारत की बैगा जनजातियों में केवल कुछ गोत्रों के व्यक्तियों को ही बहुपत्नी विवाह का अधिकार प्रदान किया जाता है। बहुपत्नी विवाह का एक अन्य रूप भी है, जिसे 'एकपक्षीय बहुपत्नी विवाह' कहते हैं। इसमें एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह तो कर सकता है, किन्तु सभी पत्नियाँ आपस में एक-दूसरे की बहनें होती हैं। इसके विपरीत स्वरूप को 'स्वतन्त्र बहुपत्नी विवाह' कहते हैं, जिसमें एक पुरुष की कई पत्नियों के मध्य किसी तरह का सम्बन्ध जरूरी नहीं होता है।

बहुपत्नी विवाह के कारण (Causes of Polygony)

बहुपत्नी विवाह के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) **पुरुषों एवं महिलाओं के अनुपात में अन्तर** (Difference in the Ratio of Men and Women)—जहाँ पर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष कम होते हैं, वहाँ पर पुरुष एक से अधिक स्त्रियाँ रखते हैं। शिकार, युद्ध एवं साहसिक, आर्थिक कार्यों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के मरने के ज्यादा अवसर रहते हैं, इससे पुरुषों की संख्या कम हो जाती है। कुछ लोगों का मानना है कि प्रजनन के समय स्त्रियों के मरने के ज्यादा अवसर रहते हैं, अतएव यह कहना उपयुक्त नहीं कि स्त्रियों के मरने के अवसर पुरुषों से कम हैं।

(ii) **पुत्र प्राप्त करने की लालसा** (Longing to have a Son)—हिन्दू लोगों में पुत्र का धार्मिक महत्व है, यदि एक स्त्री के कोई सन्तान न हो या केवल पुत्रियाँ ही हों तो पुरुष पुत्र प्राप्त करने के लिए दूसरा विवाह करता है।

(iii) **आर्थिक कारण** (Economic Causes)—कई जनजातियाँ पहाड़ी भागों में रहती हैं अथवा ऐसे क्षेत्रों में रहती हैं जहाँ जीवनयापन के लिए प्रकृति से बहुत कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार आर्थिक क्रियाएँ अनेक सदस्यों की एक सहयोगी क्रिया है। अधिक स्त्रियाँ होने पर उन्हें खेतों में मजदूरों के रूप में कार्य में लगाया जाता है। वे गृह कार्य में मदद करती हैं।

(iv) **देवर-विवाह**—एक भाई की मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा से दूसरे भाई को विवाह करना होता है। इससे भी जीवित भाई की संख्या बढ़ जाती है।

(v) कभी-कभी अधिक पत्नियों को व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का भी आधार माना जाता है। इससे भी बहुपत्नी प्रथा को प्रेरणा मिलती है।

गुण (Merits)

बहुपत्नी विवाह के गुण जैविकीय एवं आर्थिक क्षेत्र में स्पष्ट किये जाते हैं—

(i) इसके कारण जनजाति में अच्छे गुणों की सन्तानों की संख्या बढ़ जाती है, क्योंकि सामान्यतः वही व्यक्ति बहुपत्नी विवाह करने की स्थिति में होते हैं, जो समूह के उच्च पदों पर आसीन हों या जिनकी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ होती है।

(ii) परिवार में कई स्त्रियाँ होने से बच्चों का पालन-पोषण भली-भाँति किया जा सकता है।

(iii) इससे श्रम-विभाजन में मदद मिलती है जिससे प्राकृतिक संघर्षों का सामना करने में पुरुष ज्यादा क्षमतावान हो जाता है।

(iv) पुरुष की नवीनता की इच्छा और काम-वासना की तृप्ति परिवार में ही हो जाती है, जिससे उनके समूह में अनैतिकता या व्यभिचार बढ़ने की सम्भावना घट जाती है।

दोष (Demerits)

बहुपत्नी विवाह के दोष विशेष रूप से पारिवारिक एवं सामाजिक क्षेत्र में देखने को मिल सकते हैं–

(i) इस विवाह के फलस्वरूप समाज में स्त्रियों की स्थिति में बहुत अधिक ह्रास होता है, जिससे बच्चों के व्यक्तित्व का सही विकास नहीं हो पाता है।

(ii) ऐसे परिवार अधिकांशत: क्लेश, ईर्ष्या व मतभेद के केन्द्र होते हैं, क्योंकि सभी पत्नियाँ पुरुष पर अपना एकाधिकार रखने का प्रयास करती हैं।

(iii) बहुपत्नी विवाही परिवारों की आर्थिक स्थिति हमेशा बिगड़ने का भय रहता है, क्योंकि ऐसे परिवारों में बच्चों की संख्या ज्यादा व आर्थिक साधनों की मात्रा सीमित रहती है। यही वजह है कि बहुपत्नी विवाहों की संख्या लगातार घटती जा रही है।

3. बहुपति प्रथा (Polyandry)

बहुपति प्रथा बहुविवाह का ही एक दूसरा रूप है। बहुविवाह का अर्थ 'एक व्यक्ति का कई साथियों से एक ही समय में विवाह होना' है। **डॉ. रिवर्स** के शब्दों में, "एक स्त्री का कई पतियों के साथ विवाह सम्बन्ध बहुपति विवाह कहलाता है।" **मैक्लैनन** ही एक ऐसा पहला विद्वान था जिसने मानवशास्त्र के सिद्धान्तों में बहुपति प्रथा का वर्णन किया। कई समाजों में बहुपति प्रथा का प्रचलन हमें देखने को मिलता है। प्राचीन ब्रिटोन्स में भी पिता, भाइयों एवं पुत्रों का एक समूह एक स्त्री से विवाह कर लेता था किन्तु सन्तानें उसी पुरुष के नाम से जानी जाती थीं, जिसके साथ उस स्त्री का विवाह होता था। बहुपति विवाह की प्रथा कई जनजातियों में प्रचलित रही है; जैसे–बाण्टु जनजाति, पशुपालक बहिमा, पोलेनेशिया के मार्क्वेशस द्वीप समूह, स्ट्रेबो एवं सीजर, कनारी द्वीप समूहों, उत्तरी अमेरिका की अलस्कान, एस्किमों, अमेरिकन, अरबों, गाशी, इण्डियन्स, मलाया जलडमरूमध्य, मेडागास्कर, अमेरिका की शोशोनिन व श्रीलंका की सिंहली जनजाति इत्यादि। भारत में भी विभिन्न जनजातियों में बहुपति विवाह की प्रथा प्रचलित रही है; **जैसे**–तिब्बत, देहरादून, जोनसार, बाबर परगना व शिमला की पहाड़ियों, टिहरी गढ़वाल में रहने वाले खस राजपूतों, नीलगिरि की पहाड़ियों में बसने वाले टोडा तथा कोटा लोग, लद्दाखी बोटा एवं चेन्नई के तियान और इरावा व मालाबार के नायर जनजाति में इत्यादि। इस प्रथा का प्रचलन कश्मीर से लेकर असम तक के क्षेत्र में निवास करने वाले इण्डोआर्यन एवं मंगोलायड लोगों में भी रहा है।

बहुपति विवाह के दो रूप हैं–एक वह जिसमें एक स्त्री के सारे पति आपस में भाई-भाई होते हैं। यह प्रथा तिब्बत में प्रचलित है। मैक्लैनन ने इसे तिब्बती बहुपति प्रथा कहा है। इसे भ्रातृक बहुपति प्रथा के नाम से भी जाना जाता है। भ्रातृक बहुपति प्रथा खस, टोडा तथा कोटा लोगों में प्रचलित है। प्रिंस पीटर ने श्रीलंका के रतनपुरा जिले का वर्णन करते हुए कहा है कि वहाँ के सिंहली व्यक्तियों में प्राय: दो भाई एक पत्नी के साथ घर बसाकर रहते हैं। इसका एक दूसरा रूप भी है जिसमें पतियों के मध्य आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। मैक्लैनन ने इसे नायर बहुपतित्व कहा है। इसका उदाहरण मालाबार के नायर लोग हैं। इसे अभ्रातृक बहुपति प्रथा कहते हैं।

बहुपतिप्रथा को मातृपक्ष और पितृपक्ष दोनों के साथ जोड़ सकते हैं। पितृपक्षीय बहुपति प्रथा टोडा, खस एवं कोटा इत्यादि में प्रचलित है, जिसमें स्त्री विवाह के उपरान्त या तो पतियों के सामूहिक निवास

में रहती है या बारी-बारी से सभी पतियों के पास कुछ समय के लिए रहती है। मातृपक्षीय बहुपति विवाही परिवार में स्त्री अपनी माँ के परिवार में या मूल निवास पर ही रहती है और पति ही यहाँ पर बारी-बारी से आते रहते हैं। यह प्रथा मातृवंशीय नायर लोगों में है।

बहुपति प्रथा के प्रचलन के कारण (Reasons for the Prevalence of Polyandry)

इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

(i) वेस्टरमार्क का यह कहना है कि बहुपति विवाह का मुख्य कारण लिंग अनुपात का असन्तुलन होना है यानी समाज में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की संख्या अधिक होना है। इसका कारण यह है कि बहुत-से समाजों में जीवन अत्यन्त संघर्षमय है। इस संघर्ष में स्त्रियों को भार स्वरूप समझा जाता है, इसलिए उन्हें पैदा होते ही मार दिया जाता है। इससे स्त्रियों की संख्या में कमी आ जाती है और पुरुषों की संख्या अधिक हो जाती है। रॉबर्ट ब्रिफाल्ट का मत है कि, यह मत या विचार सदैव उचित नहीं है क्योंकि लद्दाख, तिब्बत तथा सिक्किम में स्त्री-पुरुषों के अनुपात में कोई खास भिन्नता नहीं है। लद्दाख में तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से ज्यादा है फिर भी वहाँ बहुपति प्रथा का प्रचलन है।

(ii) समनर, कनिंघम एवं डॉ. आर. एन. सक्सेना ने इस प्रथा के लिए गरीबी को ही जिम्मेदार माना है। जो लोग पहाड़ों पर निवास करते है, उन्हें वहाँ खेती योग्य भूमि कम मिलती है तथा अपर्याप्त कृषि के कारण जीवन-यापन हेतु अत्यन्त कठोर श्रम करना होता है।

(iii) अफ्रीका की बहिमा जनजाति में बहुपति प्रथा का प्रचलन वधू मूल्य की अधिकता के कारण है। इसलिए उसे जुटाने के लिए सभी भाई मिलकर प्रयास करते हैं और उस स्त्री पर सभी भाइयों का सामूहिक अधिकार होता है, किन्तु स्त्री के गर्भवती होते ही दूसरे भाइयों का उस पर से अधिकार हट जाता है और वह केवल उसी भाई की पत्नी रहती है जिसके लिए अन्य दूसरे भाइयों ने वधू-मूल्य जुटाने में सहयोग दिया था। एस्किमो एवं नाइजीरिया की गुआरी जनजाति में भी आर्थिक कारणों से बहुपति प्रथा प्रचलित है।

(iv) कभी-कभी सम्पत्ति के बँटवारे को रोकने के लिए भी इस प्रथा का पालन किया जाता है, जिससे कि सभी भाइयों की सम्पत्ति सामूहिक बनी रहे। टोडा जनजातियों में स्त्री-पुरुष के अनुपात का असन्तुलन भी है और इसके साथ ही वे सम्पत्ति के बँटवारे से बचने के लिए भी बहुपतित्व का पालन किया करते हैं।

(v) बहुपतित्व में प्रजनन दर कम होती है, इसलिए जनसंख्या को मर्यादित रखने की जिज्ञासा के कारण भी इस प्रथा का प्रचलन हुआ है।

बहुपति विवाह के परिणाम (Consequences of Polyandry)

बहुपति विवाह के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हैं–

(i) ऐसे विवाहों में स्त्री से जन्म लेने वाली सन्तानों की संख्या कम होती है और जो सन्तानें होती हैं, उसमें भी पुरुष सन्तानों की संख्या ज्यादा होती है। इस प्रकार यह क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है।

(ii) बहुत-सी स्त्रियों में बहुपति प्रथा से बांझपन आ जाता है। ऐसा किन जैविकीय कारणों से होता है यह अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ है।

(iii) इस प्रथा के कारण स्त्री में कई पुरुषों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने के कारण गुप्त रोग बढ़ जाते हैं और शरीर दुर्बल होता जाता है।

(iv) बहुपति प्रथा ने समाजों में नैतिकता का दोहरा मापदण्ड उत्पन्न किया है। खस जनजातियों में एक स्त्री को विवाह के पश्चात् अपने ससुराल में कठोर वैवाहिक नियमों का पालन करना पड़ता है किन्तु वही स्त्री जव अपने पिता के घर जाती है तो उसे यौन व्यवहार की स्वतन्त्रता होती है। इससे विवाहोत्तर यौन सम्बन्ध स्थापित होने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

जनजातियों में जीवन-साथी के चुनाव की विधियाँ (METHODS OF CHOOSING A MATE AMONG TRIBES)

भारतीय जनजातियों में विवाह को एक सामाजिक समझौता माना जाता है और जनजातियों में जीवन-साथी चुनने की कई विधियाँ प्रचलित हैं, जिनका निम्नवत् वर्णन किया जा रहा है–

1. अपहरण विवाह (Abduction Marriage)

इस तरह के विवाह में कन्या का अपहरण करके उसके साथ विवाह किया जाता है। 'अपहरण विवाह' उद्विकासीय क्रम में विवाह का सबसे पहला तरीका था। ऐसे विवाह समाज के विकास और नये कानूनों के प्रभावों से खत्म हो रहे हैं। किन्तु अब अभिनयात्मक हरण इसके अवशेष के रूप में देखने को मिलता है। बुशमेन लोगों में 'अभिनयात्मक हरण' का प्रचलन है। प्रीतिभोज के अवसर पर वर तथा दोनों पक्षों के लोग एक साथ एकत्रित होते हैं। भोज के दौरान वर वधू का हाथ पकड़ता है। ऐसा करने पर दोनों पक्षों के लोगों में युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वर को पीटा जाता है। युद्ध के दौरान अगर वर वधू का हाथ पकड़े रहता है तो उन दोनों का संस्कारपूर्वक विवाह करा दिया जाता है। किन्तु हाथ छोड़ देने पर उन दोनों का विवाह नहीं हो सकता। कई भील जातियाँ इस प्रथा को मानती हैं।

2. परीक्षण विवाह (Trial Marriage)

परीक्षण विवाह में एक पुरुष के साहस व शक्ति की परीक्षा ली जाती है। अगर पुरुष इस परीक्षा में खरा उतरता है तो उसका कन्या से विवाह करवा दिया जाता है। कुछ जनजातियों में विवाह के इच्छुक व्यक्ति (युवकों) से यह उम्मीद की जाती है कि वे विवाह से पहले अपने साहस को सिद्ध करें। अगर ऐसा करने में वे सफल हो जाते हैं, तो उन्हें यह अधिकार होता है कि वे अपनी मनपसन्द लड़की से विवाह करें। गुजरात के भीलों जनजाति में शौर्य की परीक्षा एक उत्सव में होती है। होली के अवसर पर उनमें 'गोल गधेड़ो' नामक एक उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव में एक खम्भे अथवा खजूर के पेड़ पर नारियल या गुड़ बाँध दिया जाता है। इस खम्भे अथवा पेड़ के चारों तरफ गाँव के कुँआरे लड़के-लड़कियाँ दो घेरों में नृत्य करते हैं। बाहर का घेरा लड़कों द्वारा बना होता है और भीतर का घेरा लड़कियों द्वारा बना होता है। ढोल आदि बजाये जाते हैं तथा नृत्य किया जाता है। नृत्य के दौरान ही लड़के-लड़कियों के घेरे को तोड़कर खम्भे पर से नारियल और गुड़ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। लड़कियाँ ऐसा करने वाले युवक को झाड़ू आदि से पीटती हैं और काटती हैं, और कपड़े खींचती हैं। इस पर भी अगर कोई व्यक्ति नारियल तथा गुड़ खाने में सफल हो जाता है तो वह उस घेरे की लड़कियों में से अपनी मनपसन्द लड़की से विवाह करने का अधिकारी होता है।

3. परिवीक्षा विवाह (Probation Marriage)

परिवीक्षा विवाह व्यवस्था के अनुसार लड़का और लड़की दोनों आपस में एक-दूसरे के साथ कई दिनों तक रहते हैं; जिससे वे एक-दूसरे के स्वभाव व गुण को समझ सकें एवं यौन अनुभवों को प्राप्त कर सकें। अगर इस समय में दोनों में पूर्ण रूप से सामंजस्य हो जाता है, तो उन दोनों का विवाह करवा दिया जाता है। अगर उनका स्वभाव एक-दूसरे के अनुकूल नहीं होता है, तो वे एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं, किन्तु अलग होने की स्थिति में लड़के को लड़की के माता-पिता को कुछ हर्जाना देना जरूरी होता है।

4. हठ विवाह (Stubborn Marriage)

इस तरह के विवाह में लड़की जिस लड़के से विवाह करना चाहती है, उसके घर पर जबरदस्ती जाकर रहने लगती है। उसे वहाँ उस समय अपमान भी सहना होता है, जब तक लड़के के माता-पिता उसे बहू के रूप में अपना न लें। ऐसा विवाह बिरहोर, हो, उरांव, कमार तथा मुंडा लोगों में पाया जाता है। 'हो' ऐसे विवाह को अनादर, उरांव निर्बोलक एवं कमार पैठू कहते हैं। अनादर का यह अर्थ है कि लड़के के माता-पिता द्वारा अपमान करने पर भी वह उनके परिवार में बनी रहती है, क्योंकि उसे उस लड़के से प्रेम हो गया है। कई बार लड़की को पीटा जाता है, घर से बाहर निकाल दिया जाता है, भोजन नहीं दिया जाता है, इस पर भी अगर लड़की दृढ़ रहती है, तो उसका उस लड़के से विवाह करवा दिया जाता है

5. सेवा विवाह (Service Marriage)

यह भी वधू-मूल्य को चुकाने का एक तरीका है कि दामाद अपने सास-ससुर की सेवा करे तथा उसके बदले में उनकी पुत्री को पत्नी के रूप में प्राप्त करे। कुछ जनजातियों में विवाह से पहले दामाद की सेवा करनी होती है, तो कुछ में विवाह के पश्चात् ससुर के घर रहकर। कई जनजातियों में यह प्रथा प्रचलित है; जैसे—चुकची, कोरयाक, योकाधिर, विनेबागों, हिदात्सा, किरचाक इत्यादि। विनेबागों और कोमांचे इण्डियन्स में दामाद से यह आशा की जाती है कि वह प्रतिदिन अपने ससुराल वालों को शिकार भेंट करे। भारत में गोंड, बैगा और बिरहोर में इसी प्रथा का प्रचलन है। गोंड एवं बैगा में जो पुरुष वधू-मूल्य नहीं दे पाता वह अपने ससुर के यहाँ सेवक के रूप में कार्य करने चला जाता है तथा कुछ वर्षों तक सेवा करने के पश्चात् ससुर की पुत्री से विवाह करके घर लौटता है। गोंड लोगों में ऐसे व्यक्ति को लामानाई तथा बैगा में लाभ-सेना अथवा गहारिया कहा जाती है।

6. क्रय विवाह (Marriage by Purchase)

इस तरह के विवाह में वधू प्राप्त करने के लिए वधू के माता-पिता अथवा उसके रिश्तेदारों को कुछ धनराशि वधू-मूल्य के रूप में देनी होती है। क्रय विवाह का हमेशा यह अर्थ नहीं है कि वधू का व्यापार किया जाता हो। बहुत-से समाजों में तो यह मूल्य केवल दिखावे के लिए ही होता है तथा उससे अधिक धन तो दूल्हे को दहेज में दे दिया जाता है। साइबेरिया की किरगीज जनजाति में वधू-मूल्य इतना ज्यादा है कि एक से अधिक पत्नी रखना कठिन है और वे लोग सामान्यत: तलाक भी नहीं देते, क्योंकि उसके उपरान्त विवाह करने का अर्थ है कि बड़ी मात्रा में धनराशि जुटाना जो कि एक बहुत कठिन कार्य है। मुरडॉक ने अपने अध्ययन में 50% समाजों में इसका प्रचलन पाया जबकि हॉबहाउस, हीलर एवं गिन्सबर्ग ने 434 जनजातियों का अध्ययन किया, जिनमें से 303 में इस प्रथा का प्रचलन था।

भारत में लगभग समस्त जनजातियों में वधू-मूल्य की प्रथा है। विशेष रूप से नागा, गोंड, संथाल, हो, उरांव, खरिया, कूकी, भील इत्यादि में यह प्रथा प्रचलित है।

7. सहमति अथवा सहपलायन विवाह (Elopement Marriage)

बाल-विवाह प्रथा जनजातियों में सामान्य रूप से कम ही रही है। अधिकतम युवक और युवतियों की सहमति से ही विवाह होते हैं तथा माता-पिता उसके निर्णय की पुष्टि औपचारिक रूप से कर देते हैं। कभी-कभी माता-पिता द्वारा युवक-युवतियों को विवाह करने की स्वीकृति नहीं दी जाती है तो वे सहपलायन कर जाते हैं और पलायन किये हुए व्यक्ति को या तो दोनों पक्षों के लोग गाँव लौटा लाते हैं या सन्तान होने पर वे स्वयं लौट आते हैं तो उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है। कुरनई जनजाति में भी सहपलायन पाया जाता है। पलायन के समय अगर वे पकड़ लिये जाते हैं, तो उनकी जमकर पिटाई की जाती है, अगर वे गाँव की सीमा पार कर जाते हैं तो उनकी सुरक्षा की जाती है तथा सन्तान होने तक वे गाँव के बाहर आश्रम में रहते हैं। झारखण्ड की हो एवं राजस्थान की भील जनजाति में यह प्रथा प्रचलित है। 'हो' इसे 'राजी-खुशी विवाह' कहते हैं।

8. विनिमय विवाह (Marriage by Exchange)

यह भी एक पत्नी प्राप्त करने का तरीका है। दो परिवारों में लड़कियों का विनिमय करना है। इनका उद्देश्य कन्या शुल्क की बुराई से बचना है। वधू मूल्य से बचने का एक दूसरा विनिमय विवाह है। इस प्रकार के विवाह प्रथा में एक परिवार के एक भाई और एक बहन का विवाह दूसरे परिवार की एक कन्या व उसके भाई के साथ किया जाता है। ऑस्ट्रेलिया एवं टोरेस स्ट्रेट द्वीप समूह में यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित है। शोशोन इण्डियन्स में भी इस प्रथा का प्रचलन है। प्राय: पूरे भारत में इस प्रथा का प्रचलन देखा जा सकता है, किन्तु असम की खासी जनजाति में इस प्रथा का निषेध है। इस तरह के विवाह में लोवी के अनुसार किसी भी परिवार को कोई हानि नहीं होती।

उत्तर प्रदेश की कुछ उच्च जातियों में इस प्रथा का प्रचलन है, इसे अदला-बदला कहा जाता है, क्योंकि इसमें जब एक पुरुष का लड़का दूसरे पुरुष की लड़की से विवाह करता है तो इसके बदले में दूसरे पुरुष का लड़का पहले पुरुष की लड़की से विवाह करता है। पंजाब राज्य में इसे बट्टा-सट्टा कहा जाता है।

6 जनजातीय धर्म [TRIBAL RELIGION]

मनुष्य अपने दैनिक जीवन में कई उद्देश्यों को पूरा करना चाहता है। उनके लिए वह कई प्रयास करता है, लेकिन सभी तरह की इच्छाओं व उद्देश्यों को पूरा करने के लिए केवल मानवीय प्रयास ही पर्याप्त नहीं होते। इस स्थिति में मनुष्य कुछ ऐसी शक्तियों व प्रणालियों की मदद लेता है जो उसकी शक्ति से श्रेष्ठ हैं, समाज एवं प्रकृति से पूरे तथा पारलौकिक हैं। इस क्रिया के दौरान धर्म और जादू का जन्म हुआ। मनुष्य में इन अदृश्य व अज्ञात शक्ति को जानने की महत्वाकांक्षा अत्यन्त प्राचीन काल से रही है। मनुष्य ने इन अत्यन्त मानवीय शक्तियों को नियन्त्रित करने और उन पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया, जिससे जादू का जन्म हुआ। जब मनुष्य अपनी असक्षमता स्वीकार करके उन पर नियन्त्रण पाने के बजाय उनसे नियन्त्रित होने लगा तथा उनके प्रति अपना समर्पण करने लगा, तो फिर धर्म का जन्म हुआ। मानवशास्त्र में धर्म और जादू के क्षेत्र में जितना अध्ययन किया गया, उतना कदाचित् ही किसी अन्य क्षेत्र में हुआ है। जनजातीय धर्म पर साहित्य भी काफी लिखा गया है।

धर्म क्या है?
(WHAT IS RELIGION ?)

अधिकांशत: वे लोग जो औद्योगीकरण की दुनिया में जन्मे हैं, उनके लिए धर्म एक सीमित दायरा है, जिसकी कुछ निश्चित मान्यताएँ हैं तथा विश्वास और रीति-रिवाजों की विशेष सीमा है। लेकिन उन लोगों के लिए धर्म एक ऐसी परम्परा है, जो प्राचीन समय से चली आ रही है, जिन्हें हम स्थानीय कहते हैं। इसका कोई अग्रदूत या संस्थापक नहीं है। उनके लिए धर्म एक जीवन जीने का ढंग है।

जनजातीय लोगों का धर्म अत्यन्त सरल है। जिस रूप में जनजातियों के लोग अपनी बाहर की दुनिया को समझते तथा मानते हैं, उनका धर्म उसी से मिलता-जुलता है। जिस सत्य में उन्हें विश्वास है, वही उनका धर्म है। जनजातीय लोग एक ऐसी दुनिया में रहते हैं, जो जीवन्त प्राणियों से भरी है। वे मनुष्यों की दुनिया और अति मानवीय दुनिया में कोई अन्तर नहीं करते हैं और कभी-कभी तो वे निर्जीव वस्तुओं और जीवन्त प्राणियों में भी अन्तर नहीं करते हैं।

धर्म का अर्थ और परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Religion)

जनजातीय जीवन के बारे में धर्म को अलग-अलग मानवशास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। इसे निम्नलिखित परिभाषाओं के द्वारा समझा जा सकता है—

स्टीफेन फचूस के अनुसार, "धर्म (रिलिजन) शब्द रेलिगेयर (Religare) से बना है जिसका अर्थ 'बाँधना' है यानी मनुष्य को ईश्वर से सम्बन्धित करना है।" धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'धृ' शब्द से मानी जाती है, जिसका आशय 'धारण करना' है अर्थात् समस्त जीवों के प्रति मन में दया-करुणा धारण करने को ही धर्म कहा गया है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सात्विक गुणों को अपनाने को धर्म कहा गया है।

टायलर के अनुसार, "धर्म का अर्थ आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है।"

हॉबल (Hoebel) के अनुसार, "धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास पर आधारित है, जिसमें आत्मावाद और मानववाद दोनों शामिल हैं।"

सर जेम्स फ्रेजर (Sir James Frazer) के अनुसार, "धर्म का अर्थ मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि अथवा आराधना है, जिनके विषय में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति तथा मानव जीवन को राह दिखाती हैं और नियन्त्रित करती हैं।"

क्यूबर (Cuber) के अनुसार, "धर्म सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित व्यवहार का वह प्रतिमान है, जिसका निर्माण पवित्र विश्वासों, विश्वास से सम्बन्धित उद्वेगपूर्ण विचारों एवं उन्हें प्रकट करने वाले बाह्य आचरणों से होता है।"

मैलिनोवस्की (Malinowski) ने धर्म में समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दोनों ही पक्षों को सम्मिलित करते हुए लिखा है कि "धर्म क्रिया की एक विधि है और उसके साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी है। धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि धर्म का सम्बन्ध अलौकिक शक्तियों में विश्वास करने से है। इस विश्वास को मानव पूजा, आराधना और कर्मकाण्ड के माध्यम से व्यक्त करता है। धर्म में यह विश्वास किया जाता है कि अलौकिक शक्ति प्रकृति और मानव जीवन को नियन्त्रित व निर्देशित करती है।

जनजाति धर्म की प्रमुख विशेषताएँ
(MAIN FEATURES OF TRIBAL RELIGION)

जनजाति धर्म की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं—

1. अलौकिक शक्ति में विश्वास—जनजातीय धर्म में यह विश्वास है कि विश्व में कोई-न-कोई अलौकिक एवं दिव्य शक्ति हैं जो सम्पूर्ण मानव समाज से श्रेष्ठ हैं। यह शक्ति ही प्रकृति, मानव जीवन एवं समस्त विश्व का संचालन करती है। इस अलौकिक शक्ति पर विश्वास ही जनजाति धर्म का मूल आधार है। साथ ही जनजातियों में भूत-प्रेत, जादू-टोना से जुड़ी मान्यताओं का भी एक मिला-जुला स्वरूप दिखायी देता है।

2. पवित्रता की धारणा—दुर्खीम का मत है कि धर्म पवित्रता एवं अपवित्रता में भेद करता है, जो पवित्र मानी जाती हैं वह धर्म से जुड़ी हुई हैं जनजातियों में भी धार्मिक-अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि से जुड़ी सभी चीजों को पवित्र माना जाता है।

3. नैतिकता का प्रभाव—जनजातियों में धर्म एवं नैतिकता को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि जो विशेषता धार्मिक होती है वह नैतिक भी होती है तथा प्रत्येक नैतिक व्यवहार को धर्म से जोड़ा जाता है।

4. प्रकृति से सम्बद्ध—जनजाति धर्म का एक विशेष पक्ष यह है कि धर्म उनके प्राकृतिक पर्यावरण से अभिन्न रूप से जुड़ा है। उनके विभिन्न त्योहार, देवताओं के स्वरूप में, पूजा-पाठ, अनुष्ठान आदि में पेड़-पौधे, नदियाँ, पहाड़ प्राकृतिक जीव-जन्तु इन सभी को पूजा जाता है। इनमें एक अलौकिक शक्ति को महसूस किया जाता है। टोडा जनजाति में भैंस की पूजा की जाती है, मुण्डा जनजाति में सूर्य को सबसे बड़ा देवता सिंहबोंगा देवता मानते हैं उनकी पूजा आराधना करते हैं। टोटमवाद जनजातियों का प्रकृति से सम्बन्ध स्पष्ट दर्शाता है।

5. धर्म का स्थानीय एवं क्षेत्रीय स्वरूप—विभिन्न जनजातियों में उनके स्थान व क्षेत्र के अनुरूप विभिन्न धार्मिक मान्यताएँ, परम्पराएँ, त्योहार, अनुष्ठान का स्वरूप देखने को मिलता है।

6. जीवन के समस्त पक्ष से सम्बन्धित—धार्मिक क्रियाएँ जीवन के आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक सभी पक्षों को प्रभावित करती है। विभिन्न जनजातियों में धर्म उनके जीवन के हर क्षेत्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है।

7. धार्मिक क्रियाएँ प्रार्थना पूजा आराधना अनुष्ठान आदि—जनजातियों में अलौकिक शक्ति के प्रति अपने विश्वास, श्रद्धा, भक्ति, आदर, प्रेम, भय आदि को व्यक्त करने हेतु विभिन्न धार्मिक क्रियाएँ पूजा-पाठ, विशिष्ट आराधना की जाती है। धार्मिक क्रिया, प्रार्थना पूजा आराधना अनुष्ठान आदि के माध्यम से अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास व्यक्त करते हैं।

8. आत्मावाद, मानावाद, बोंगवाद, जीवात्मावाद जैसे कई अवधारणाओं से जनजाति धर्म परिपूर्ण माना जाता है।

9. भावनात्मक एवं मानसिक पक्ष—जनजातीय धर्म में यह विश्वास है कोई अलौकिक एवं दिव्य शक्ति है जो सम्पूर्ण मानव समाज से श्रेष्ठ हैं ये शक्ति इन्हें भावनात्मक एवं मानसिक रूप से सबल करती है

10. तर्क का अभाव—जनजाति धर्म वैज्ञानिक तथ्यों व तार्किक विचार से परे होता है। यह भावना विश्वास, श्रद्धा, प्रेम पर आधारित है। प्रचलित धार्मिक मान्यता, विचार, विश्वास को वैज्ञानिक तथ्यों व तार्किक विचार की कसौटी से परे है।

धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त
(THEORIES OF THE ORIGIN OF RELIGION)

धर्म की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

सर्वात्मवाद या आत्मवाद का सिद्धान्त (Theory of Animism)

सर्वात्मवाद अथवा जीववाद वास्तव में अंग्रेजी शब्द 'एनिमिज्म' (Animism) का भावानुवाद है। एनिमिज्म शब्द लैटिन भाषा के 'एनिमा' शब्द से निर्मित है, जिसका अर्थ 'आत्मा' है। 'एडवर्ड बी टायलर' ने सबसे पहले सन् 1781 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'प्रिमिटिव कल्चर' में इस सिद्धान्त की व्याख्या धर्म की उत्पत्ति के कारणात्मक विवेचन में किया है। सर्वात्मवाद का अर्थ है, "वह विश्वास जिसके आधार पर जनजातीय/आदिम मानव समस्त प्राकृतिक पदार्थों व प्रघटनाओं में 'आत्मा' को अन्तर्विष्ट मानता है। उसका विश्वास होता है कि जिस तरह मानव में आत्मा का समावेश है, उसी तरह ब्रह्माण्ड के समस्त प्राकृतिक पदार्थों और प्रघटनाओं में आत्मा अन्तर्विष्ट है।

टायलर का कहना है कि सामान्यत: हमें धर्मों की बहुलता और उनमें अन्तर देखने को मिलते हैं किन्तु मूलत: वे सभी एक ही विचार पर निर्भर हैं और वह है 'आत्मा' अथवा 'जीव में विश्वास'। उन्होंने आत्मा को आदिम मनुष्यों से लेकर सभ्य मनुष्यों तक के धर्म का आधार माना। इसलिए उनके सिद्धान्त को आत्मावाद अथवा जीववाद कहा जाता है। उन्होंने मानवशास्त्रीय शब्दकोश को एक नया शब्द 'आत्मावाद' दिया है।

आत्मावाद को दो भागों में विभाजित करते हैं—**पहला,** आत्मा का सिद्धान्त, जिसके अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्यों में आत्माएँ होती हैं, जो कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भी शेष रहती हैं; **दूसरा,** प्रेतों का सिद्धान्त, जिसके अनुसार किसी जीवित व्यक्ति या भौतिक सावयव के स्थूल शरीर में एक सर्वथा अलग अधि-प्राकृतिक तत्व की विद्यमानता में विश्वास को आत्मावाद कहते हैं। जनजातियों को यह विश्वास है कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व खत्म नहीं होता है। आत्माएँ या तो किसी विशिष्ट स्थान या प्रेतात्माओं के रूप में व्यक्ति की सफलता या विफलता का निर्धारण करती हैं या किसी विशेष स्थान या पदार्थ में प्रवेश कर मानवीय क्रियाओं को संचालित करती हैं। इस तरह इन आत्माओं को प्रसन्न रखने और इनके प्रति भय-मिश्रित श्रद्धा को प्रकट करने के रूप में ही आरम्भिक धर्म का उद्भव हुआ।

उन आत्माओं को भी स्वीकार किया गया है जो मनुष्य की आत्माओं से अलग हैं, वे दैवी आत्माएँ हैं। अत: आत्माएँ प्रेतात्माओं से लेकर शक्तिशाली प्राणियों तक की होती हैं, जो अमर हैं और सांसारिक घटनाओं व मनुष्य जीवन को नियन्त्रित एवं निर्देशित करती हैं। यही वजह है कि मनुष्य इन आत्माओं से डरने लगता है और उन्हें भय मिश्रित श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। इसलिए **टायलर** का मत है कि धर्म आत्मा अथवा आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है। यह विश्वास उसमें रोजमर्रा के अलग-अलग अनुभवों से उत्पन्न हुआ, जो कि उसने जाग्रत व सुषुप्तावस्था में किये और जो जीवित तथा मृत अवस्था से स्पष्ट हुए। निद्रा की अवस्था में स्वप्न के दौरान वह स्वयं को विभिन्न कार्यों को करते हुए देखता है, अपने पूर्वजों से मिलता है और ऐसे स्थान पर जाता है, जहाँ वह पूर्व में कभी नहीं गया। जाग्रतावस्था में वह अपनी परछाईं को देखता, तालाबों तथा नदियों के जल में अपना प्रतिबिम्ब देखता, अपनी आवाज की प्रतिध्वनि सुनता है। इसी समय उसने जीवित व मृत व्यक्ति में भेद देखा। मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर उसका बोलना, चलना, खाना-पीना सब कुछ समाप्त हो जाता है; तब आदिम मनुष्य के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ होगा कि ऐसी कोई-न-कोई शक्ति जरूर है जिसके शरीर से निकल जाने पर वह बिल्कुल निष्क्रय हो जाता है। हालाँकि मृत्यु के पश्चात् भी वह जीवित व्यक्ति की तरह ही दिखाई देता

है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। इस तरह आदिम/जनजातीय लोगों में उस अदृश्य वस्तु अथवा शक्ति के प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ और उसे 'आत्मा' के नाम से पुकारा गया, जिसके शरीर में रहने तक व्यक्ति जीवित रहता है और शरीर से पृथक् होने पर वह मर जाता है। **टायलर** के शब्दों में, "आत्मा एक पतली निराकार मानव प्रतिमूर्ति, आकृति में कोहरा, चलचित्र या छाया की तरह है।"

आदिम मनुष्य के मन में एक प्रश्न यह भी रहा होगा कि निद्रा अवस्था और मृत अवस्था में पर्याप्त समानता होने के बावजूद निद्रा अवस्था मृत्यु जैसी क्यों नहीं है? निद्रा अवस्था में स्वप्न में शरीर से कोई शक्ति निकलकर अलग-अलग स्थानों पर जाती है, अलग-अलग मृत व जीवित व्यक्तियों से मिलती है और नींद खुलने पर पुन: लौट आती है। मृत अवस्था में भी व्यक्ति के शरीर से कोई शक्ति निकलती है, जो शरीर को बिल्कुल निष्क्रिय कर देती है, किन्तु वह पुन: नहीं लौटती है। ऐसे अनुभवों ने आदिम मनुष्य में दो तरह की धारणा उत्पन्न की। **पहली, मुक्त या स्वतन्त्र आत्मा**, जो मनुष्य के शरीर से बाहर जा सकती है और हर तरह के अनुभव करके पुन: लौट आती है; **दूसरी, शरीर आत्मा**, जो एक बार शरीर छोड़कर चली जाती है, तो पुन: लौटकर नहीं आती है और मनुष्य मर जाता है तथा उसकी आत्मा भूत अथवा प्रेतात्मा बन जाती है। यह आत्मा अमर है, अगर ऐसा नहीं होता तो काफी समय पहले मरे हुए व्यक्ति स्वप्न में क्यों और कैसे दिखाई देते? भारत में और अन्य स्थानों में भी मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर कुछ जनजातियों में दो तरह की अन्त्येष्टि क्रियाएँ की जाती हैं—एकहरी (Green Funeral) और दूसरी सूखी (Dry Funeral) जो इस अनिश्चितता का सूचक है कि हो सकता है आत्मा पुन: लौट आये। हरी दाह-क्रिया मृत्यु के तुरन्त बाद की जाती है और सूखी दाह-क्रिया कुछ समय पश्चात् जबकि आत्मा के पुन: लौटने की सम्भावना शेष नहीं रहती। टोडा जनजाति में दोनों तरह की अन्त्येष्टि क्रियाएँ की जाती हैं। 'हो' लोग सूखी दाह-क्रिया को 'जगटापा' कहते हैं। कोटा लोग हरी दाह-क्रिया को 'पदसऊ' एवं सूखी दाह-क्रिया को 'वर्लदऊ' कहते हैं।

अत: टायलर के अनुसार इन अमूर्त तथा अभौतिक प्रेतात्माओं के प्रति भय व श्रद्धा ही जनजातीय धर्म का आधार है।

आत्मावाद की विशेषताएँ (Characteristics of Animism)

आत्मावाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) आत्मावाद की धारणा का यह आधार है कि कई तरह की आत्माएँ हो सकती हैं, जैसे किसी पूर्वज, भूत, प्रेत इत्यादि। यह आत्माएँ किसी भी स्थान, वृक्ष या प्राकृतिक पदार्थ में मौजूद हो सकती हैं। इस तरह आत्माओं की प्रकृति एक-दूसरे से काफी अलग होने कारण इनकी भिन्न-भिन्न रूपों में पूजा की जाती है। यही वजह है कि आत्मावाद की धारणा कई निराकार देवी-देवताओं के विश्वास रूप में पायी जाती है। इस अर्थ में आत्मावाद बहुदेवत्ववादी है।

(ii) जिस तरह समाज में कुछ व्यक्ति अच्छे होते हैं और कुछ व्यक्ति बहुत ही दुष्ट प्रकृति के होते हैं, उसी तरह ऐसा माना जाता है कि कुछ आत्माएँ व्यक्ति को सफलता दिलाने का प्रयास करती हैं, जबकि कुछ के प्रभाव से व्यक्ति में दुष्प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। जनजातीय धर्म का विकास इन दोनों तरह की आत्माओं को खुश अथवा प्रसन्न रखने के विचार से हुआ है।

(iii) आत्मावाद का सम्बन्ध हर एक वस्तु या स्थान से नहीं होता है। कई पूर्वजों या प्रेतों की आत्माएँ किसी विशिष्ट स्थान या वस्तु में ही रहती हैं।

(iv) आत्मावाद वैयक्तिक है अर्थात् आत्मा का सम्बन्ध किसी-न-किसी व्यक्ति से है।

आलोचना (Criticism)

टायलर का सिद्धान्त पूर्व में विभिन्न मानवशास्त्रियों के द्वारा अपनाया गया, जिसमें प्रमुख जर्मनी के मानवशास्त्री थे, लेकिन विविध अध्ययनों के आधार पर आत्मवादी सिद्धान्त में अनेक दोष पाये गये और इस सिद्धान्त की ऐण्ड्रयूलेग, मैरट एवं जेवेन्स ने निम्नांकित आलोचनाएँ कीं—

(i) सम्पूर्ण सिद्धान्त को देखने से यह मालूम होता है कि टायलर ने आदिम मनुष्य को तर्कशील तथा दार्शनिक व्यक्ति के रूप में व्यक्त किया है। जिस व्यवस्थित क्रम में उसने इस सिद्धान्त

को रखा, ऐसा आदिम मनुष्य तो क्या आधुनिक मनुष्य भी नहीं रख सकता? ऐसा लगता है कि सम्भवत: टायलर को वस्तु-स्थिति का पूर्णत: ज्ञान नहीं था क्योंकि उसने अपने तथ्यों का संकलन यात्रियों व ईसाई धर्म के प्रचारकों के द्वारा किये गये रोचक वर्णनों से ग्रहण किया और उन लोगों ने आदिम/जनजातीय धर्म को ईसाई धर्म के नजरिए से देखा।

(ii) टायलर आत्मा में विश्वास को ही धर्म का आधार मानते हैं और आदिम समाजों में उच्च देवता की धारणा की कमी मानते हैं, किन्तु लैग का कहना है कि ऑस्ट्रेलिया की कुछ जनजातियों में ईश्वर की धारणा देखने को मिलती है। **श्मिट** (Schmidt) ने भी नीग्रिटो जनजातियों व कैलिफोर्निया की फ्यूजी जनजातियों में ईश्वर की धारणा का वर्णन किया है। अतएव टायलर का यह मत गलत है कि आदिम मनुष्यों में उच्च देवता की धारणा का विकास बाद में हुआ तथा पूर्व में आत्मा की धारणा ही थी।

(iii) टायलर ने धर्म के उद्भव को बहुत ही सरल व स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। उनका कहना है कि केवल परछाईं, प्रतिध्वनि, स्वप्न और मृत्यु के अनुभवों ने ही धर्म जैसी जटिल संस्था को जन्म दिया होगा, ऐसा नहीं माना जा सकता।

(iv) मैरेट का कहना है कि आदिम जातियों में आत्मा की धारणा ही नहीं अपितु अन्य धारणाएँ भी पायी जाती हैं; जैसे—जीवित सत्ता में विश्वास, जिसके कारण जीवसत्तावाद का सिद्धान्त उत्पन्न हुआ।

(v) धर्म एक सामाजिक तथ्य है, इसलिए इसकी व्युत्पत्ति में सामाजिक कारकों का भी योगदान रहा है, केवल आत्मा में विश्वास से ही धर्म की उत्पत्ति को अपनाना सामाजिक तथ्यों की उपेक्षा करना है।

जीवित-सत्तावाद अथवा मानावाद (Manaism)

कुछ मानवशास्त्रियों ने आत्मावाद से पहले जीवित-सत्तावाद के अस्तित्व को अपनाया। इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि प्रत्येक वस्तु में जीवित सत्ता होती है, चाहे वह जड़ हो या चेतन, जो कि **अलौकिक** है। इस सत्ता में विश्वास तथा उसकी आराधना व पूजा से ही धर्म का जन्म हुआ। इस मत को शुरू में मैक्समूलर एवं प्रीउस (Preuss) ने प्रस्तुत किया था। कॉडरिंगटन (Codrington) तथा मैरेट (Marett) ने इसे एक विशिष्ट प्रकार से व्यक्त किया, जिसे मानावाद (Manaism) के नाम से जाना जाता है। मलेनेशिया के लोग अलौकिक शक्ति को 'माना' के नाम से बुलाते हैं। इसीलिए मैरेट ने अपने सिद्धान्त को 'मानावाद' का नाम दिया। मलेनेशिया की जनजातियों में यह विश्वास है कि किसी भी कार्य की सफलता अथवा विफलता माना की शक्ति पर निर्भर करती है। अगर कोई व्यक्ति अधिक बुद्धिमान अथवा शक्तिशाली है तो इसका कारण यह है कि उसमें माना की शक्ति की बहुलता है। युद्ध में विजय, शिकार में सफलता एवं मछलियों का अधिक पकड़ा जाना भी 'माना' की शक्ति के कारण ही है। भारतीय जनजातियों में भी मजूमदार ने 'माना' जैसी शक्तियों का वर्णन किया है। 'हो' लोगों में बोंगा (Bonga) की संकल्पना, उत्तरी अमेरिका की जनजातियों में ओरेण्डा की संकल्पना व अन्य स्थानों पर एरन तथा बकुआ की संकल्पना भी मैरेट के इस सिद्धान्त के अन्तर्गत ही आती है।

'माना' को परिभाषित करते हुए **कॉडरिंगटन** ने लिखा है, "माना एक शक्ति है जो कि भौतिक अथवा शारीरिक शक्ति से सर्वथा अलग है, यह भले और बुरे रूपों में कार्य करती है और इस पर आधिपत्य अथवा नियन्त्रण प्राप्त करना लाभदायक है। ..... यह अलौकिक इस अर्थ में है कि यह सभी चीजों पर प्रभाव डालने के लिए जिस-जिस रूप में काम करती है, वह मनुष्य की सामान्य शक्ति से परे है और प्रकृति की साधारण प्रक्रियाओं से बाहर है।"

लोवी का मत है कि "माना विद्युतधारा की भाँति व्यक्ति तथा वस्तुओं को प्रभावित करती है और एक-दूसरे में आ-जा सकती है। किसी कार्य में सफलता 'माना' के कारण एवं विफलता इसकी अनुपस्थिति के कारण ही मिलती है। **मैरेट** ने अपने अध्ययन के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि 'माना' एक अवैयक्तिक, अशरीरी तथा अलौकिक शक्ति है जो अच्छे तथा बुरे दोनों रूपों में मनुष्य को प्रभावित करती है।

आलोचना (Criticism)

आत्मावाद की भाँति मानावाद भी पूर्ण रूप से नहीं अपनाया गया और इसकी कई विद्वानों ने निम्नांकित आलोचनाएँ की हैं–

(i) मानावाद के सिद्धान्त में यह कहीं भी वर्णन नहीं किया गया है कि 'माना' की संकल्पना का उद्भव कैसे हुआ, क्या आदिम मनुष्य इतना कल्पनाशील और दार्शनिक था कि बिना किसी आधार के ही उसने अलौकिक शक्ति की धारणा को उत्पन्न किया।

(ii) इस सिद्धान्त में अशरीरी तथा अलौकिक शक्ति को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है।

(iii) धर्म एक सामाजिक तथ्य है, इसलिए इसकी उत्पत्ति के लिए सामाजिक कारक भी जिम्मेदार हैं, लेकिन इस सिद्धान्त में समाज के महत्व को नहीं अपनाया गया है।

(iv) आदिम जनजातियों में धर्म और जादू से सम्बन्धित कई विश्वास पाये जाते हैं और उन सभी को मानावाद के आधार पर नहीं समझा जा सकता है।

(v) दुर्खीम का कहना है कि धर्म का सम्बन्ध पवित्र वस्तुओं से होता है। मानावाद में पवित्र और अपवित्र में कोई अन्तर नहीं किया गया है।

आत्मावाद और मानावाद में अन्तर (Difference between Animism and Manaism)

आत्मावाद और मानावाद में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं–

(i) आत्मावाद में कई आत्माओं में विश्वास किया जाता है, ये आत्माएँ अलौकिक शक्तियों से युक्त हैं जबकि मानावाद केवल एक ही अलौकिक शक्ति में विश्वास करता है जो सजीव और निर्जीव दोनों में विद्यमान है। अत: आत्मावाद बहुतत्ववादी है, तो मानावाद एकत्ववादी है।

(ii) आत्मावाद में आत्मा का किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध होता है, जो कोई पूर्वज अथवा भूत-प्रेत हो सकता है। अत: यह वैयक्तिक शक्ति पर विश्वास है। दूसरी तरफ मानावाद एक अवैयक्तिक तथा अशरीरी शक्ति पर विश्वास है जो विश्व की समस्त जड़-चेतन वस्तुओं में विद्यमान है।

(iii) आत्मावाद का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि यह वैयक्तिक आत्मा पर जोर देता है, जबकि मानावाद का क्षेत्र विश्व की समस्त चेतन-अचेतन वस्तुओं पर बल देने के कारण व्यापक है।

प्रकृतिवाद (Naturalism)

मैक्समूलर के अनुसार प्रकृति के कई रूपों को देखकर आदिकाल में मनुष्य के मन में भय, आतंक और आश्चर्य का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इन मानसिक भावनाओं के कारण वह प्रकृति से ऐसे डरने लगा, जैसे कि वह किसी प्राणी से डरता हो और इसीलिए उसके प्रति उनके दिल में श्रद्धा और भक्ति जैसी भावनाएँ उत्पन्न हुईं। इसी के आधार पर संस्कृति व भाषाशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने यह निष्कर्ष निकाला कि धर्म की उत्पत्ति का पहला चरण प्रकृति के अलग-अलग पदार्थों; जैसे–सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि एवं वायु की आराधना थी। मिस्र में और अन्य जगह पर हुई खुदाइयों से इस विचार को पुष्टि मिली। मिस्र में सबसे बड़ा देवता 'रा' यानी सूर्य था। ऐसा कहते हैं कि प्रकृति के विविध पदार्थों को सजीव समझना तथा उनके प्रति श्रद्धा, प्रेम अथवा भय की भावना का जन्म दोषपूर्ण भावना के कारण हुआ। प्राय: ऐसा कहा जाता है कि सूर्य उदय अथवा अस्त होता है, आँधी चल रही है इत्यादि। लेकिन वास्तव में न तो सूर्य उदय होता है और न ही अस्त होता है। प्रकृति की असीम विशालता व शक्ति के सामने जब मनुष्य नतमस्तक होता है, तो धर्म का उद्भव होता है। मैक्समूलर का सिद्धान्त लम्बे समय तक अस्तित्व में रहा। प्राचीन काल से ही प्राकृतिक पदार्थों और शक्तियों की पूजा लगभग समस्त देशों में देखने को मिलती है, किन्तु इस आधार पर धर्म की उत्पत्ति ढूँढ़ने पर कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, इस कारण मैक्समूलर के प्रकृतिवाद की कई मानवशास्त्रियों ने आलोचना की है।

आलोचना (Criticism)

(i) एण्ड्रयूलेग कहते हैं कि त्रुटिपूर्ण भाषा के आधार पर धर्म की उत्पत्ति एक संकुचित व्याख्या है, केवल प्रकृति की पूजा से ही धर्म की उत्पत्ति बनाना अनुचित है।

(ii) दोषपूर्ण भाषा का प्रयोग करने से प्राकृतिक पदार्थों को सजीव समझने की बात को साबित करने के लिए कोई प्रमाण या साक्ष्य नहीं है।

(iii) धर्म एक सामाजिक संस्था है। मैक्समूलर ने धर्म की उत्पत्ति में कहीं भी सामाजिक कारकों को महत्व नहीं दिया है। इस सिद्धान्त में अनुमान तथा कल्पना पर अत्यधिक बल दिया गया है।

टोटमवाद (Totemism)

टोटमवाद आदिम धर्म का एक रूप है, जिसमें आदिम जनजातियों का अपने पूर्वजों के साथ किसी प्रतीक या टोटम किसी भी रूप में हो सकता है; जैसे—वनस्पति, पशु, वर्षा एवं नदी इत्यादि। टोटम एवं टोटमी के मध्य एक तरह का अन्त:सम्बन्ध माना जाता है। इस विषय में विश्वास के कारण ऐसा माना जाता है कि टोटम-पशु या वनस्पति उनकी रक्षा करेंगे और संकट के समय में उनकी प्रार्थना सुनेंगे। टोटम को जनजाति का मूल पुरुष माना जाता है कि जिसके आधार पर वंश-उत्पत्ति की खोज की जाती है। इसी रूप में जनजाति स्वयं को सूर्य, चन्द्रमा किसी विशेष पशु अथवा वृक्ष से उत्पन्न मानती है। टोटम पशु को मारना, जलाना अथवा खाना वर्जित है। एकसमान टोटम को मानने वाले समान रक्त सम्बन्धी माने जाते हैं जिससे उनके मध्य वैवाहिक सम्बन्ध वर्जित है। जनजाति में अपने टोटम के प्रति विशेष आदर और सम्मान का भाव रहता है।

टोटमवाद हालाँकि अत्यन्त प्राचीन माना जाता है, लेकिन इसे सर्वव्यापक नहीं माना जा सकता। **ब्राइटमैन** (Brightman) ने कहा है—"Totemism ..... was not equally universal, but was very wide spread and socially important."

टोटम की उत्पत्ति के विषय में कई विचारकों के अलग-अलग मत हैं। टायलर का मत है कि किसी विशिष्ट प्राणी अथवा वनस्पति में आदिम मनुष्य का वास स्थान है, इसी विश्वास से टोटम की उत्पत्ति हुई। **रिजले** के अनुसार, किसी आकस्मिक सम्बन्ध के आधार पर इस प्रथा का जन्म हुआ जिससे अशुभ घटनाओं को नियन्त्रित किया जा सके। **उदाहरणार्थ,** मोर को मारने के पश्चात् अन्धा होने से मोर के प्रति आदर और भय के मिश्रित भाव से उसे टोटम मान लेना। इसी तरह **हट्टन** ने टोटम की उत्पत्ति की अन्य व्याख्या की है। उनके अनुसार टोटम की उत्पत्ति का आधार जीव, वनस्पति अथवा फल-फूल संरक्षण है। उनका मत है किसी नयी वनस्पति के बारे में जानकारी मिलने पर उसे छुपाने या सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता था, जिससे दूसरी जातियाँ उनका पता लगाकर उन्हें शीघ्र समाप्त न कर दें।

दुर्खीम ने पवित्र और अपवित्र को समझने हेतु टोटमवाद का सहारा लिया है। हालाँकि टोटम को धर्म की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी मानने वाले कई अन्य विद्वान् भी हैं; जैसे—मैकलेनन, टायलर, लूबॉक, फ्रेजर, स्पेन्सर, रॉबर्टसन, स्मिथ इत्यादि। फ्रायड ने सन् 1913 में 'Totem and Taboo' नामक पुस्तक में अपने सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। दुर्खीम ने इसे अपने सिद्धान्त में सहायक और आवश्यक तत्व के रूप में अपनाया। उनका कहना है कि ऑस्ट्रेलिया की अरूटा जनजाति सबसे आदिम जनजाति है। (पहली त्रुटि) उनमें टोटमवाद प्रचलित है तथा टोटमवाद ही सभी धर्मों का शुरुआती स्तर रहा है (दूसरी त्रुटि) उन्होंने टोटमवाद को इस तरह स्पष्ट किया है—टोटमवाद नैतिक कर्तव्यों और मौलिक विश्वासों का वह समूह है जिनके द्वारा समाज, पशु, पौधों और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के मध्य एक पवित्र व अलौकिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। आदिवासी यह मानते हैं कि टोटम में अलौकिक शक्ति का निवास है, जो उनके सामाजिक जीवन को नियन्त्रित करती है। टोटम सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं, विश्वासों और संगठन को ही टोटमवाद कहते हैं।

टोटमवाद की विशेषताएँ (Features of Totemism)

दुर्खीम ने टोटमवाद की निम्नांकित विशेषताएँ बतायी हैं–

(i) टोटम एक गोत्र होता है, जिसके साथ गोत्र के सारे सदस्य अपना पवित्र सम्बन्ध मानते हैं।

(ii) टोटम पवित्र है, इसलिए उसे मारना अथवा हानि पहुँचाना सामान्यत: पाप माना जाता है।

(iii) गोत्र के सदस्य यह मानते हैं कि उनका टोटम संकट के समय उनकी रक्षा करता है, भविष्यवाणी करता है। ऐसा करने के लिए वह स्वप्न में आकर कोई बात कह सकता है और अगर वह पशु है, तो उनकी विशेष बोली किसी घटना का पूर्व संकेत है।

(iv) टोटम के प्रति आदर-भाव की भावना होने के करण उसकी मृत्यु पर शोक जताया जाता है। अगर वह कोई पशु है, तो त्योहारों और विशिष्ट अवसरों पर उसकी खाल पहनी जाती है, घर में उसके चित्र लगाये जाते हैं और शरीर पर गुदवाये जाते हैं।

(v) टोटम से सम्बन्धित नियमों का उल्लंघन करने वालों की सामाजिक निन्दा होती है तथा नियमों का पालन करने वालों को सम्मान प्रदान किया जाता है।

(vi) टोटम सामूहिक प्रतिनिधित्व का प्रतीक है। यह एक गोत्र के सदस्यों को नैतिक बन्धन में बाँधता है। एक टोटम को मानने वाले स्वयं को भाई-बहिन मानते हैं। अतएव वे टोटम बहिर्विवाह का पालन करते हैं, यद्यपि बहिर्विवाह का नियम हमेशा नहीं माना जाता है।

आलोचना (Criticism)

विभिन्न मानवशास्त्रियों ने इसकी निम्न प्रकार आलोचना की है–

(i) दुर्खीम ने अपने सिद्धान्त में समाज को आवश्यकता से अधिक महत्व देने की गलती की है। अतएव यह कहना अनुचित है कि समाज ही वास्तविक देवता है।

(ii) दुर्खीम ने धर्म और टोटम को एक मानने की त्रुटि की है, जबकि दोनों के अलग-अलग नियम हैं। यह कहना भी अनुचित है कि टोटमवाद ही धर्म का शुरुआती रूप रहा है। अगर टोटम और धर्म में कोई अन्तर नहीं होता तो समय के प्रभाव से इतने लम्बे समय में वे दोनों अब तक एक हो जाते।

(iii) धर्म को केवल पवित्र और अपवित्र में अन्तर के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस तरह का अन्तर आदिम समाजों में चाहे सम्भव हो, लेकिन आधुनिक समाजों में दुर्गम है।

(iv) धर्म का उद्भव सामूहिक आधारों पर ही नहीं हुआ है अपितु मैलिनोवस्की ने अपने अध्ययन के द्वारा यह स्पष्ट किया है, कि आदिम जातियों में अनेक व्यक्तिगत अनुभवों तथा आधारों ने भी धर्म को जन्म देने में सहयोग दिया है।

(v) वर्तमान वैज्ञानिक खोजों ने यह स्पष्ट किया है कि सामूहिक चेतना अथवा मस्तिष्क जैसी कोई चीज या वस्तु नहीं होती। अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अतार्किक और अवैज्ञानिक है। मैलिनोवस्की का कहना है कि दुर्खीम ने जिस तरह से समाज का व्यक्तिकरण किया है, वह अनुचित है।

(vi) रैडक्लिफ ब्राउन का यह कहना है कि टोटम में पूजा का सदैव धार्मिक महत्व ही नहीं होता अपितु आर्थिक महत्व भी होता है।

जनजातीय धर्म की विशेषताएँ
(FEATURES OF TRIBAL RELIGION)

जनजातीय धर्म की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. जनजातियों में धर्म तथा नैतिकता को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि जो विशेषता धार्मिक होती है, वह नैतिक भी होती है और प्रत्येक नैतिक व्यवहार को धार्मिक व्यवहार माना जाता है।

2. जनजातीय धर्म वस्तुत: एक प्राकृतिक धर्म है। इसमें मानव तथा प्रकृति के मध्य एकीकरण करने का प्रयास किया जाता है। इस तरह अधिकतम जनजातियाँ पेड़-पौधों, नदियों, पहाड़ों और कई अन्य स्थानों में अलौकिक शक्ति को महसूस करती हैं और इसीलिए उनकी पूजा करती हैं।

3. जनजातीय धर्म का स्वरूप क्षेत्रीय अथवा स्थानीय है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी धार्मिक विश्वास का प्रसार अत्यन्त बड़े क्षेत्र में देखने को नहीं मिलता है। अन्य शब्दों में, जनजातीय धर्म लघु अथवा छोटी-छोटी परम्पराओं से ज्यादा सम्बन्धित है। एक ही जनजाति में धार्मिक विश्वासों में एकसमानता नहीं होती है।

4. जनजातीय धर्म का सम्बन्ध जीवन के समस्त पक्षों से है। धार्मिक क्रियाएँ आर्थिक जीवन तथा पारिवारिक सम्बन्ध दोनों में ही प्रभावित करती हैं। इनके द्वारा रोग का उपचार भी किया जाता है और समूह में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण भी किया जाता है। इसी कारण जनजातीय समाजों में ओझाओं तथा पुजारियों का स्थान विशेषत: सम्मानपूर्ण होता है। जिस व्यक्ति को टोटम की सेवा करने का अधिकार प्राप्त होता है, उस व्यक्ति को एक पवित्र व्यक्ति या ईश्वरीय प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है।

5. जनजातीय धर्म आत्मा, माना, बोंगा तथा जीववाद जैसे कई विश्वासों से भरा पड़ा है। जनजातीय लोग इन सभी विश्वासों के आधार पर अपनी समस्त सफलताओं व विफलताओं को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

6. अधिकतम जनजातियों में धार्मिक विश्वासों और जादू-टोने की क्रियाओं का एक मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। जनजातियाँ न केवल किसी अलौकिक शक्ति की उपासना ही करती हैं, अपितु भूत-प्रेतात्माओं में भी विश्वास करती हैं।

धर्म के तत्व
(ELEMENTS OF RELIGION)

बूम एवं सैल्जनिक ने धर्म के निम्न तत्वों का वर्णन किया है—

1. अनुष्ठान (Rituals)—समस्त धर्मों में अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित विश्वासों को व्यक्त करने के लिए अनुष्ठान और कर्मकाण्ड होते हैं। **बूम एवं सैल्जनिक** के शब्दों में, "धार्मिक अनुष्ठानों का अर्थ उन स्वीकृत क्रियाओं से है जो स्वयं पवित्र होती हैं।"

2. विश्वास (Beliefs)—विश्वास ही धर्म का आधार है। समस्त धर्मों में अलौकिक शक्ति में विश्वास व्यक्त किया जाता है। लोगों का यह विश्वास होता है कि अलौकिक शक्ति से ही हमें सुख-दु:ख, सफलता-असफलता मिलती है। पवित्रता के निर्माण एवं विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में विश्वास की महती भूमिका होती है।

3. अनुभूतियाँ (Feelings)—अनुष्ठानों का एक उद्देश्य यह भी होता है कि वे उपयुक्त भावनाओं को जाग्रत करते हैं। धार्मिक भावनाओं से धर्म के साधनों तथा प्रविधियों को समर्थन मिलता है। विनम्रता, आदर व भय साधारण धार्मिक भावनाएँ हैं, लेकिन यदा-कदा धर्म रोमांच और आतंक भी दर्शाता है।

4. संगठन (Organization)—धार्मिक क्रियाओं को पूर्ण कराने और अनुयायियों से धर्म का पालन कराने हेतु धर्म में एक संगठन होता है। यह संगठन धार्मिक विश्वास और परम्पराओं को बनाए रखने, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सिद्धान्तों में विशेषज्ञों को भर्ती करने, उन्हें शिक्षण-प्रशिक्षण देने व समाज के अन्य वर्गों के साथ धार्मिक समूह के सम्बन्ध को स्पष्ट करने का काम करता है और खास अवसरों पर अनुयायियों को एकत्रित भी किया करता है।

5. प्रतीक तथा पौराणिक गाथाएँ (Symbols and Mythology)—धार्मिक भावनाओं तथा अनुष्ठानों को सरल रूप में प्रकट करने के लिए धार्मिक प्रतीक भी होते हैं। **उदाहरणार्थ**—मन्दिर, मूर्ति, झण्डे, मस्जिद, विशेष प्रकार की पोशाक इत्यादि। इसी तरह हर धर्म में कुछ कहानियाँ और कथाएँ भी

होती हैं, जिनमें ईश्वरीय चमत्कारों एवं धार्मिक पुरुषों के बारे में बताया जाता है और धर्म से व्यक्ति क आस्था तथा विश्वास को मजबूत किया जाता है।

6. निषेध/पाबन्दी (Taboos)—हर धर्म में व्यक्ति को आचरण के कुछ नियम बताए जाते हैं औ इसके साथ-साथ कुछ व्यवहारों को न करने के निर्देश भी दिये जाते हैं; **जैसे**—झूठ न बोलना, चोरी करना, अनैतिक यौन सम्बन्ध न बनाना, छल-कपट न करना इत्यादि। निषेधों का उद्देश्य धार्मि पवित्रता को कायम रखना है।

7. धार्मिक संस्तरण (Religious Hierarchy)—हर धर्म में एक संस्तरण व्यवस्था होती जिसमें धार्मिक विशेषज्ञों, पण्डे, पुजारियों, शासन, पादरियों और मौलवियों का स्थान सामान्य अनुयायि को अपेक्षा उच्च होता है और उन्हें कुछ विशेष अधिकार व सुविधाएँ मिलती हैं।

जनजातियों में धर्म के प्रकार्य
(FUNCTIONS OF RELIGION IN TRIBES)

जनजातियों में धर्म के प्रमुख प्रकार्य निम्नलिखित हैं—

1. मानसिक तनावों और भावनाओं/संवेगों से मुक्ति (Freedom from Mental Stres and Emotions)—रोजमर्रा की जिन्दगी में कई बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि व्यक्ति तनाव, क्रोध, संघर्ष, घृणा, उपेक्षा, हीनता इत्यादि की परिस्थितियों से गुजरता है। अगर ये स्थितियाँ लम्ब समय तक मनुष्य में बनी रहें तो वह परेशान और विक्षिप्त हो जाएगा तथा उसका व्यवस्थित रूप से का करना सम्भव नहीं हो पायेगा। इसलिए तनावपूर्ण स्थिति से मुक्ति पाने के लिए वह ईश्वर से प्रार्थ करता है, अलौकिक शक्ति के सामने आत्मसमर्पण करता है।

2. समाज में नैतिकता बनाये रखना (Maintaining Morality in Society)—धार्मिक नियम में नैतिकता का पुट होता है। कई बार ऐसा होता है कि धार्मिक और नैतिक नियम एक ही होते हैं।

3. सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं की रक्षा (Defense of Social Values and Beliefs)—इन सामाजिक मूल्यों को मानने वालों के लिए परलोक और इस लोक में सुविधाओं का भरोसा दिलाया जाता है और अवहेलना/उपेक्षा करने वालों को धर्म दण्ड का भय बताता है। धर्म पाप-पुण्य, स्वर्ग और नर्क की कल्पना द्वारा लोगों में भय उत्पन्न करके सामाजिक नियमों को मानने हेतु प्रोत्साहन, प्रेरणा तथा रुकावट उत्पन्न करता है।

4. समाज में एकता उत्पन्न करना (Creating Unity in Society)—दुर्खीम का कहना है कि धर्म उन सब लोगों को एकता के सूत्र में बाँधता है, जो उसमें विश्वास करते हैं। सामुदायिक और धार्मिक दंगों के मौके पर तथा धार्मिक उत्सवों को मनाने के समय एक धर्म के मानने वाले लोगों में एकता दिखाई देती है।

5. मनुष्यों में सद्गुणों का विकास (Development of Virtues in Humans)—धार्मिक नियमों को मानने से व्यक्ति अपराध तथा समाज विरोधी कार्यों को करने से बचता है। धर्म व्यक्ति में प्रेम, दया, सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, सहानुभूति तथा सहयोग के गुण उत्पन्न करता है।

6. सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करना (Perform the function of Social Control)—धर्म हमें बताता है कि हमें समाज में कैसे आचरण करने चाहिए?, एक मनुष्य के दूसरे मनुष्य के साथ कैसे सम्बन्ध हों?, परिवार के सदस्यों के आपसी कर्तव्य क्या हों? इत्यादि का धर्म में वर्णन किया जाता है। समाज में आचरण के धार्मिक नियम सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखने में सहयोग देते हैं।

7. व्यक्ति में सुरक्षा की भावना उत्पन्न करना (Instill a Sense of Security in the Individual)—धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति यह सोचता है कि वह संसार में अकेला ही नहीं है, ईश्वर सदैव उसके साथ है तथा बुरे समय में वह उसकी रक्षा करेगा, उसकी मदद करेगा। धर्म के सहारे व्यक्ति दूसरे संकटों को आसानी से पार कर जाता है।

7 भारत में जनजातियों की वर्तमान स्थिति [PRESENT STATUS OF TRIBES IN INDIA]

अवधारणा
(CONCEPT)

भारत में जनजातीय समुदायों का एक लम्बा और विविधतापूर्ण इतिहास रहा है। ये समुदाय देश के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचना का अहम हिस्सा हैं। भारत में जनजातियों (आदिवासियों) की वर्तमान स्थिति एक जटिल सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक मुद्दा है, जिसे विभिन्न पहलुओं से समझा जा सकता है। भारतीय संविधान में इन्हें "अनुसूचित जनजाति" के रूप में मान्यता दी गई है, जिसका उद्देश्य इन समुदायों के सशक्तिकरण और विकास को सुनिश्चित करना है। जनजातीय समुदाय मुख्यत: वनों, पहाड़ों और दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करते हैं, जहाँ आधुनिक विकास की पहुँच सीमित है। वर्तमान में, भारत की कुल आबादी का लगभग 8.6% हिस्सा जनजातीय समुदायों से सम्बन्धित है, जो मुख्यत: वनों, पहाड़ों और दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करते हैं। इनकी वर्तमान स्थिति को समझने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति, भूमि अधिकार और राजनीतिक भागीदारी जैसे कारकों का विश्लेषण आवश्यक है।

आजादी के बाद से सरकार ने जनजातीय कल्याण के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाई हैं, जैसे **वन अधिकार अधिनियम** (2006), **विशेष घटक योजना** (SCP), **और एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय** (EMRS)। हालाँकि, इन समुदायों की साक्षरता दर (59%) और स्वास्थ्य सुविधाएँ राष्ट्रीय औसत से पीछे हैं। गरीबी, बेरोजगारी और संसाधनों तक सीमित पहुँच इनकी प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

एक महत्वपूर्ण मुद्दा **भूमि अधिकार** है, क्योंकि विकास परियोजनाओं और उद्योगों के कारण जनजातीय लोगों को विस्थापन का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा, आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण इनकी सांस्कृतिक पहचान खतरे में है। सरकार द्वारा **जनजातीय उपयोजना** (TSP) और **आयुष्मान भारत** जैसी पहलें की गई हैं, लेकिन इनका प्रभाव सीमित है।

राजनीतिक स्तर पर, संविधान में **अनुच्छेद** 330 और 332 के तहत आरक्षण दिया गया है, लेकिन वास्तविक प्रतिनिधित्व अभी भी कमजोर है। इस प्रकार, भारत में जनजातियों की वर्तमान स्थिति एक मिश्रित तस्वीर प्रस्तुत करती है—जहाँ कुछ सुधार हुए हैं, वहीं अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इन समुदायों के सतत विकास के लिए नीतिगत सुधार, जागरुकता और सामाजिक न्याय आवश्यक हैं।

जनजातियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर
(SOCIO-ECONOMIC STATUS OF TRIBES)

भारत में जनजातीय समुदायों का सामाजिक-आर्थिक स्तर अभी भी देश की मुख्यधारा से पिछड़ा हुआ है। ये समुदाय मुख्यत: वनों, पहाड़ी और दूरस्थ क्षेत्रों में निवास करते हैं, जहाँ बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच सीमित है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSSO) के अनुसार, जनजातीय परिवारों की औसत आय गैर-जनजातीय परिवारों की तुलना में काफी कम है।

गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी इन समुदायों की प्रमुख समस्याएँ हैं। रिपोर्ट्स के अनुसार, जनजातीय परिवारों की औसत आय राष्ट्रीय औसत से काफी कम है। इनमें से अधिकांश लोग कृषि, वनोपज संग्रह और दैनिक मजदूरी पर निर्भर हैं। महिलाओं की स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि उन्हें

शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीमित पहुँच प्राप्त है। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ, जैसे "विशेष घटक योजना" और "जनजातीय उप-योजना" इनकी स्थिति सुधारने में मदद कर रही हैं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

प्रमुख सामाजिक-आर्थिक संकेतक (Key Socio-economic Indicators)

1. **गरीबी**—जनजातीय समुदायों में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों का प्रतिशत (लगभग 45%) राष्ट्रीय औसत (लगभग 22%) से दोगुना है।
2. **रोजगार**—अधिकांश जनजातीय लोग कृषि, वनोपज संग्रह और असंगठित मजदूरी पर निर्भर हैं, जिसमें आय अनिश्चित होती है।
3. **शिक्षा**—साक्षरता दर (59%) राष्ट्रीय औसत (73%) से कम है, विशेषकर महिलाओं में यह अन्तर और भी ज्यादा है।
4. **स्वास्थ्य**—कुपोषण, मलेरिया और टीबी जैसी बीमारियों का प्रसार जनजातीय क्षेत्रों में अधिक है।
5. **आवास एवं बुनियादी सुविधाएँ**—बिजली, पेयजल और स्वच्छता सुविधाओं तक पहुँच सीमित है।

तालिका—जनजातियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर (मुख्य आँकड़े)

संकेतक	जनजातीय समुदाय	राष्ट्रीय औसत
गरीबी रेखा से नीचे (%)	~ 45%	~ 22%
साक्षरता दर (%)	59%	73%
महिला साक्षरता दर (%)	52%	65%
शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000)	44	28
बेरोजगारी दर (%)	8-10%	6-7%

चुनौतियाँ एवं सरकारी पहल (Challenges and Government Initiative)

- **चुनौतियाँ**—भूमि हनन, विस्थापन, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं की कमी।

सरकारी योजनाएँ—

- **विशेष घटक योजना (SCP)**—जनजातीय विकास के लिए विशेष बजट।
- **वन धन योजना**—वनोपज आधारित आजीविका को बढ़ावा।
- **एकलव्य मॉडल स्कूल (EMRS)**—जनजातीय छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा।

भारत में जनजातियों की शिक्षा और साक्षरता दर
(EDUCATION AND LITERACY RATE OF TRIBES IN INDIA)

जनजातीय समुदायों में शिक्षा का स्तर राष्ट्रीय औसत से काफी नीचे है। 2011 की जनगणना के अनुसार, जनजातीय समुदायों की साक्षरता दर लगभग 59% थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 73% था। इन क्षेत्रों में स्कूलों की कमी, शिक्षकों का अभाव और बुनियादी ढाँचे की खराब स्थिति मुख्य समस्याएँ हैं। बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि उनमें ड्रॉपआउट दर अधिक है। सरकार ने "एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय" जैसी योजनाएँ शुरू की हैं, लेकिन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच अभी भी एक चुनौती बनी हुई है।

भारत में जनजातीय समुदायों की शिक्षा और साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से काफी पीछे है, जो इनके सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को दर्शाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, जनजातीय समुदायों की साक्षरता दर 59% थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 73% था। यह अन्तर ग्रामीण और दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों में और भी गहरा हो जाता है, जहाँ शैक्षिक बुनियादी ढाँचा अत्यन्त दयनीय है।

प्रमुख समस्याएँ (Major Problems)—

1. **स्कूलों की कमी**—कई जनजातीय गाँवों में प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों तक पहुँच नहीं है, जिसके कारण बच्चों को लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है।
2. **शिक्षकों का अभाव**—जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षकों की भारी कमी है, और जो हैं, वे अक्सर नियमित रूप से उपस्थिति नहीं होते।
3. **भाषाई बाधा**—अधिकांश जनजातीय बच्चों की मातृभाषा और स्कूली शिक्षा की भाषा (हिन्दी/अंग्रेजी) में असंगति होती है, जिससे उनकी शिक्षा प्रभावित होती है।
4. **बालिका शिक्षा में पिछड़ापन**—जनजातीय समुदायों में लड़कियों की साक्षरता दर (52%) लड़कों (65%) से काफी कम है। सामाजिक रूढ़ियाँ, घरेलू कार्यों में उलझाव और कम उम्र में विवाह जैसी प्रथाएँ लड़कियों की शिक्षा में बाधक हैं।
5. **उच्च शिक्षा तक सीमित पहुँच**—जनजातीय छात्रों के लिए कॉलेज और व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों तक पहुँच बहुत कम है, जिससे उनके रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं।

सरकारी पहलें (Government Initiatives)—

- **एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय** (EMRS)—जनजातीय छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए सरकार ने इन आवासीय स्कूलों की स्थापना की है।
- **विशेष छात्रवृत्ति योजनाएँ**—जनजातीय छात्रों के लिए प्री-मैट्रिक और पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं।
- **आदिवासी शिक्षा के लिए विशेष पाठ्यक्रम**—कुछ राज्यों में जनजातीय भाषाओं और संस्कृति को शामिल करके शिक्षा को अधिक समावेशी बनाया गया है।

तालिका—जनजातीय और गैर-जनजातीय साक्षरता दर की तुलना

संकेतक	जनजातीय समुदाय	राष्ट्रीय औसत
साक्षरता दर (2011)	59%	73%
पुरुष साक्षरता दर	65%	81%
महिला साक्षरता दर	52%	65%
प्राथमिक स्कूल ड्रॉपआउट दर	~ 35%	~ 20%

जनजातीय समुदायों में शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए सरकारी योजनाएँ तो हैं, लेकिन इनका क्रियान्वयन अक्सर कमजोर होता है। भाषाई बाधाओं को दूर करने, शिक्षकों की नियुक्ति सुनिश्चित करने और लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। केवल शिक्षा के माध्यम से ही जनजातीय युवाओं को रोजगार और सामाजिक उन्नति के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं।

स्वास्थ्य सुविधाएँ और चुनौतियाँ
(HEALTH FACILITIES AND CHALLENGES)

जनजातीय समुदायों के स्वास्थ्य संकेतक राष्ट्रीय औसत से पीछे हैं। इन क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर (IMR) और मातृ मृत्यु दर (MMR) अधिक है। मलेरिया, टीबी और कुपोषण जैसी बीमारियाँ आम हैं। दूरदराज के इलाकों में अस्पतालों और डॉक्टरों की कमी के कारण स्वास्थ्य सेवाएँ प्रभावित होती हैं। सरकार ने "जनजातीय स्वास्थ्य योजना" और "आयुष्मान भारत" जैसी पहलें की हैं, लेकिन जागरूकता की कमी और परम्परागत उपचार पर निर्भरता अभी भी बाधाएँ हैं।

भूमि अधिकार और वन अधिकार अधिनियम
(LAND RIGHTS AND FOREST RIGHTS ACT)

भारत में जनजातीय समुदायों के भूमि और वन अधिकारों का मुद्दा उनके अस्तित्व और आजीविका से सीधे जुड़ा हुआ है। ऐतिहासिक रूप से, ये समुदाय वनों और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहे हैं,

लेकिन स्वतन्त्रता के बाद के विकास मॉडल ने अक्सर उनके पारम्परिक अधिकारों को नजरअंदाज किया है। 2006 में पारित **वन अधिकार अधिनियम** (Forest Rights Act : FRA) इस दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम था, जिसका उद्देश्य जनजातीय और अन्य वनवासी समुदायों के ऐतिहासिक अन्याय को दूर करना था।

प्रमुख प्रावधान (Main Provisions)—

1. **व्यक्तिगत अधिकार**—अधिनियम वन भूमि पर व्यक्तिगत कब्जे को मान्यता देता है (अधिकतम 4 हेक्टेयर तक)।
2. **सामुदायिक अधिकार**—ग्राम सभाओं को वन संसाधनों के प्रबन्धन और संरक्षण का अधिकार देता है।
3. **विकास अधिकार**—वन क्षेत्रों में स्कूल, अस्पताल जैसी बुनियादी सुविधाओं के निर्माण की अनुमति।
4. **पारम्परिक अधिकार**—जनजातीय समुदायों के पारम्परिक ज्ञान और संसाधनों पर अधिकार सुनिश्चित करता है।

कार्यान्वयन की चुनौतियाँ (Implementation Challenges)—

- **जागरूकता की कमी**—कई जनजातीय समुदायों को अपने अधिकारों की पूरी जानकारी नहीं है।
- **प्रशासनिक अड़चनें**—आवेदन प्रक्रिया जटिल होने और अधिकारियों की उदासीनता से अधिकार मिलने में देरी।
- **विरोधाभासी कानून**—वन संरक्षण अधिनियम और FRA के बीच टकराव।
- **विस्थापन का खतरा**—विकास परियोजनाओं के कारण अधिकार प्राप्त भूमि भी असुरक्षित है।

तालिका—वन अधिकार के तहत दावों की स्थिति (2023 तक)

दावा प्रकार	कुल दावे	मंजूर दावे
व्यक्तिगत	42 लाख	20 लाख
सामुदायिक	1.8 लाख	0.75 लाख

सरकारी पहलें और आलोचना (Government Initiatives and Criticism)—

- **डिजिटल प्लेटफॉर्म**—ऑनलाइन दावा प्रक्रिया को सरल बनाने का प्रयास।
- **विशेष अभियान**—पेंडिंग दावों को शीघ्र निपटाने के लिए राज्य स्तरीय कार्यक्रम।
- **आलोचना**—अधिनियम के क्रियान्वयन में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी और नौकरशाही रुकावटें।

अत: वन अधिकार अधिनियम जनजातीय समुदायों को सशक्त बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कानूनी ढाँचा प्रदान करता है, लेकिन इसका पूर्ण कार्यान्वयन अभी भी एक चुनौती बना हुआ है। जनजातीय समुदायों की भूमि सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सरकार को जागरुकता अभियानों को तेज करना चाहिए और दावा निपटान प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी एवं कुशल बनाना चाहिए। केवल कानून बनाने से नहीं, बल्कि उसे ईमानदारी से लागू करने से ही जनजातीय समुदायों के साथ ऐतिहासिक अन्याय का निवारण सम्भव हो पाएगा।

भारत में जनजातियों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व
(POLITICAL REPRESENTATION OF TRIBES IN INDIA)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 330, 332 और 243D जनजातीय समुदायों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करते हैं। हालाँकि, इन समुदायों का राजनीतिक प्रभाव अभी भी सीमित है। स्थानीय

स्वशासन (पंचायती राज) में 50% आरक्षण के बावजूद, जनजातीय नेताओं को अक्सर उचित मंच नहीं मिलता। लोकसभा में 47 और राज्य विधानसभाओं में 540 से अधिक सीटें अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित हैं। यह व्यवस्था संसदीय लोकतंत्र में उनकी भागीदारी को संस्थागत बनाती है।

प्रमुख संवैधानिक प्रावधान (Major Constitutional Provisions)—

1. **लोकसभा आरक्षण (अनुच्छेद 330)**—जनसंख्या अनुपात के आधार पर STs के लिए सीटें आरक्षित।
2. **विधानसभा आरक्षण (अनुच्छेद 332)**—राज्य स्तर पर प्रतिनिधित्व।
3. **पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण (अनुच्छेद 243D)**—स्थानीय स्वशासन में 50% तक आरक्षण।

वर्तमान स्थिति के प्रमुख पहलू (Major Aspects of Current Situation)—

- 17वीं लोकसभा में 47 अनुसूचित जनजाति सांसद (8.6% सदस्य)
- झारखण्ड, छत्तीसगढ़ जैसे जनजातीय बहुल राज्यों में मुख्यमंत्री पद तक पहुँच।
- राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू का चुनाव एक ऐतिहासिक उपलब्धि।
- 73वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय निकायों में महिला अनुसूचित जनजाति प्रतिनिधियों को बढ़ावा।

प्रमुख चुनौतियाँ (Major Problems)—

1. **प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व**—कई अनुसूचित जनजाति नेता मुख्यधारा राजनीति में हाशिये पर।
2. **दलित-आदिवासी एकता का अभाव**—राजनीतिक दलों द्वारा विभाजनकारी रणनीति।
3. **निर्णय प्रक्रिया में सीमित भूमिका**—कैबिनेट मंत्री पदों में कम प्रतिनिधित्व।
4. **आन्तरिक जनजातीय असमानता**—कुछ प्रमुख जनजातियों का वर्चस्व।

तालिका—राजनीतिक प्रतिनिधित्व के आँकड़े (2024)

स्तर	आरिक्षत सीटें	वास्तविक प्रतिनिधित्व
लोकसभा	47	47 (8.6%)
राज्यसभा	—	12 (5%)
राज्य विधानसभाएँ	540 +	6.8% मुख्यमंत्री

सकारात्मक पहल (Possitive Initiatives)—

- ST महिलाओं का पंचायती राज में बढ़ता प्रतिनिधित्व।
- जनजातीय मुद्दों पर संसदीय समितियों की सक्रियता।
- चुनाव आयोग द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में विशेष जागरुकता अभियान।

सुधार की आवश्यकता (Need of Improvement)—

- राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतन्त्र को मजबूत करना।
- जनजातीय नेतृत्व विकास कार्यक्रम।
- चुनावी बॉण्ड प्रणाली पर पारदर्शिता।
- छोटी जनजातियों को प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना।

संवैधानिक व्यवस्था के बावजूद जनजातीय समुदायों का वास्तविक राजनीतिक सशक्तिकरण अभी अधूरा है। प्रतिनिधित्व के साथ-साथ नीति निर्माण में सार्थक भागीदारी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। राजनीतिक दलों को जनजातीय मुद्दों को केवल चुनावी लाभ के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय के रूप में देखना चाहिए।

भारत में जनजातियों का सांस्कृतिक संरक्षण और आधुनिकीकरण का प्रभाव
(CULTURAL PRESERVATION OF TRIBES IN INDIA AND IMPACT OF MODERNIZATION)

जनजातीय समुदायों की संस्कृति, भाषा और परम्पराएँ धीरे-धीरे खत्म हो रही हैं। आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण युवा पीढ़ी अपनी जड़ों से दूर हो रही है। सरकार ने "जनजातीय शोध संस्थान" और सांस्कृतिक उत्सवों को बढ़ावा दिया है, लेकिन इन प्रयासों को और मजबूत करने की आवश्यकता है। भारत के जनजातीय समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत—जिसमें भाषाएँ, लोककलाएँ, पारम्परिक ज्ञान और धार्मिक प्रथाएँ शामिल हैं—वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के दबाव में तेजी से कमजोर हो रही हैं। यूनेस्को के अनुसार, भारत की 196 से अधिक जनजातीय भाषाएँ विलुप्ति के कगार पर हैं, जबकि पारम्परिक हस्तशिल्प और कलाएँ बाजारवाद की भेंट चढ़ रही हैं।

संरक्षण की प्रमुख चुनौतियाँ (Major Challenges of Reservation—

1. **भाषाई विलुप्ति**—युवा पीढ़ी द्वारा मातृभाषा का परित्याग।
2. **पारम्परिक ज्ञान का ह्रास**—हर्बल मेडिसिन और प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन की परम्परागत प्रणालियों की उपेक्षा।
3. **धार्मिक परिवर्तन**—मिशनरी गतिविधियों और मुख्यधारा धर्मों का प्रभाव।
4. **पर्यटन का दुष्प्रभाव**—जनजातीय संस्कृति का 'एक्जॉटिक' प्रदर्शन।

सकारात्मक पहल (Possitive Initiatives)—

- **जनजातीय संग्रहालय**—भोपाल स्थित राष्ट्रीय जनजातीय संग्रहालय जैसे प्रयास।
- **भाषा संरक्षण**—'एथनोलॉग' रिपोर्ट के अनुसार 42 जनजातीय भाषाओं का डिजिटलीकरण।
- **हस्तशिल्प प्रोत्साहन**—TRIFED द्वारा 'वन धन' और 'ट्राइब्स इण्डिया' जैसी योजनाएँ।
- **सांस्कृतिक उत्सव**—हॉर्नबिल फेस्टिवल (नागालैण्ड) और अरण्यक फेस्टिवल (छत्तीसगढ़)।

आधुनिकीकरण के द्वन्द्व (The Dilemma of Modernization)—

1. **सकारात्मक पक्ष**—शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच।
2. **नकारात्मक पक्ष**—उपभोक्तावादी संस्कृति द्वारा सामुदायिक जीवन का क्षरण।
3. **पीढ़ीगत विभाजन**—युवाओं और बुजुर्गों के बीच सांस्कृतिक मूल्यों को लेकर टकराव।

तालिका—सांस्कृतिक संरक्षण की स्थिति

क्षेत्र	वर्तमान स्थिति	संरक्षण प्रयास
भाषाएँ	196 खतरे में	भाषा सर्वेक्षण ऑफ इण्डिया
हस्तशिल्प	32% कलाकारों ने पेशा बदला	TRIFED की हस्तक्षेप योजनाएँ
पारम्परिक नृत्य	58 प्रकार संकटग्रस्त	Zonal Cultural Centres द्वारा प्रशिक्षण

सरकारी और गैर-सरकारी पहल (Government and Non-government Initiatives)—

- राष्ट्रीय जनजातीय अनुसन्धान संस्थान (NTRI) द्वारा सांस्कृतिक डॉक्युमेंटेशन।
- यूनेस्को द्वारा छऊ नृत्य और गोंड कला को मान्यता।
- आदिवासी साहित्य अकादमी द्वारा मौखिक परम्पराओं का संकलन।

अत: जनजातीय संस्कृति के संरक्षण के लिए एक सन्तुलित दृष्टिकोण आवश्यक है जो आधुनिकता के लाभों को स्वीकार करते हुए पारम्परिक मूल्यों की रक्षा करे। शिक्षा प्रणाली में जनजातीय इतिहास और कलाओं को शामिल करना, सामुदायिक-आधारित पर्यटन को बढ़ावा देना और डिजिटल संरक्षण तकनीकों का उपयोग करना भविष्य की दिशा हो सकती है। सबसे महत्वपूर्ण यह कि जनजातीय समुदायों को स्वयं अपनी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में केन्द्रीय भूमिका निभानी चाहिए।

8

जनसांख्यिकीय पृष्ठभूमि—भौगोलिक वर्गीकरण एवं जातीय वर्गीकरण

[DEMOGRAPHIC PROFILE : GEOGRAPHICAL CLASSIFICATION AND ETHNIC CLASSIFICATION]

भारत एक विशाल देश है, जिसमें कई विविधताएँ हैं। यहाँ पर अलग-अलग धर्म, मत, सम्प्रदाय, प्रजाति और जाति के लोग रहते हैं। छत्तीसगढ़ जनसंख्या के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण राज्य है। मध्य प्रदेश की जनजातीय जनसंख्या जहाँ 21.10% है, वहीं छत्तीसगढ़ की जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का 30.60% है। अगर हम मिजोरम, लक्षद्वीप, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, दादरा और नागर हवेली व मणिपुर जैसे जनजातीय जनसंख्या वाले छोटे-छोटे राज्यों को पृथक् कर दें तो बड़े राज्यों में छत्तीसगढ़ में जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत सर्वाधिक है।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियों में कुल 42 जनजातियों को शामिल किया गया है। इन जनजातियों की जनसंख्या में बहुत अधिक विविधता है।

तालिका—जनजातियाँ एवं उनकी जनसंख्या

क्र. सं.	जनजाति	कुल जनसंख्या	परिवारों की संख्या
1.	गोंड	42,98,404	9,55,086
2.	कंवर	8,87,477	2,04,093
3.	उराँव	7,48,789	1,69,485
4.	हल्बा	3,95,182	81,656
5.	भतरा	2,23,900	48,674
6.	सवर, सावरा	1,39,709	33,479
7.	कोरबा	1,29,429	30,453
8.	बिंझवार	1,19,718	30,449
9.	नगेसिया	1,14,532	25,519
10.	भारिया	1,13,967	26,669
11.	बैगा	89,744	21,860
12.	खैरवार	91,816	18,167
13.	अगरिया	67,196	16,805
14.	माझी	65,027	15,591
15.	भैना	55,975	14,581
16.	मझवार	55,320	14,002
17.	धनवार	50,995	12,586
18.	खरिया	49,032	11,993
19.	कमार	26,530	6,700
20.	कोल	20,873	5,384
21.	मुण्डा	15,095	3,908

6527	धारभी	13,476	3,184
22.	पाव	12,729	3,337
23.	परधान	11,111	2,859
24.	खोंड	10,991	3,036
25.	भुजिया	10,603	2,958
26.	बियार	5,525	1,463
27.	गढ़वा	4,352	2,780
28.	सओंता	1,742	881
29.	बिरहोर	1,578	838
30.	परजा	617	298
31.	कोरकू	484	181
32.	भील	244	172
33.	कोलम	192	140
34.	सौर	110	73
35.	मवासी	89	70
36.	सहरिया	73	50
37.	भील मीणा	24	29
38.	दमोर	24	21
39.	कोरकू	22	15
40.	सोंर	09	08
41.	आंध	09	08
42.	पण्डो	—	—
43.	छत्तीसगढ़	78,22,902	17,79,416
कुल			

जनजातियों का भौगोलिक वर्गीकरण

(GEOGRAPHICAL CLASSIFICATION OF TRIBES)

कई विद्वानों ने भारत के अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर जनजातियों का वर्गीकरण किया है। डॉ. एस. सी. दुबे ने भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर जनजातीय क्षेत्रों को चार भागों में विभक्त किया है—(i) उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, (ii) मध्यवर्ती क्षेत्र, (iii) दक्षिणी क्षेत्र, (iv) पश्चिमी क्षेत्र।

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में उन्होंने उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, त्रिपुरा, मेघालय, असम, मणिपुर, नागालैण्ड इत्यादि को शामिल किया है। **मध्यवर्ती क्षेत्र** में मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान का कुछ भाग और ओडिशा का कुछ भाग आता है। **दक्षिणी क्षेत्र** में कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, केरल तथा तमिलनाडु को शामिल किया है। पश्चिमी क्षेत्र में राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात को शामिल किया है।

डॉ. बी. एस. गुहा ने भारत की समस्त जनजातियों को भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया है—

1. **उत्तर एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र** (North and North-Eastern Zone)—यह क्षेत्र कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी उत्तर प्रदेश तथा असम के पहाड़ी भाग तक फैला है। इसके अन्तर्गत लेह, शिमला एवं लुशाई पर्वत का क्षेत्र भी आता है। यह पूरा क्षेत्र सीमावर्ती होने की वजह से राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियाँ गारो, खासी, थारू, भोटिया, कूकी, डाफला, नागा, गुज्जर, चकमा, अबोट, लेपचा, मिकिर, लुशाई, गुरंग इत्यादि हैं।

2. **मध्यवर्ती क्षेत्र** (Central Zone)—यह क्षेत्र उत्तर में गंगा के मैदान से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैला है। इसमें विन्ध्याचल तथा सतपुड़ा के पहाड़ों की पट्टी भी शामिल है। इसके अन्तर्गत

दक्षिणी उत्तर प्रदेश, दक्षिणी राजस्थान, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में रहने वाली जनजातियाँ आती हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियाँ इस प्रकार हैं—संथाल, मुण्डा, खरिया, गोंड, हो, बैगा, भील, बिरहोर, कोली इत्यादि। यह क्षेत्र जनसंख्या और क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से अन्य क्षेत्रों से काफी बड़ा है। इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण जनजातियाँ गोंड, भील और सन्थाल हैं। यहाँ की जनजातियों पर औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का प्रभाव पड़ा है तथा वे नयी शहरी संस्कृति के सम्पर्क में आ रही हैं। यहाँ की अधिकाधिक जनजातियाँ कृषि कार्य करती हैं। बिहार तथा उड़ीसा की बहुत-सी जनजातियाँ उद्योगों, खानों व कारखानों में कार्य करती हैं।

3. दक्षिणी क्षेत्र (Southern Zone)—यह क्षेत्र कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित है। इसके अन्तर्गत कोचीन, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, आन्ध्र व तमिलनाडु इत्यादि क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख जनजातियों में नीलगिरी के टोडा, पनियन, कोटा, कदार, हैदराबाद के चेंचू, कुरुम्बा एवं उराली इत्यादि प्रमुख हैं। इस क्षेत्र में अण्डमान एवं निकोबार द्वीप-समूहों की जनजातियों; जैसे—जाखा, निकोबारी, सेंटीनेली, ओंग व शोपन इत्यादि को शामिल किया गया है।

भारत में नृजातीयता/प्रजातीयता/जातीयता
(ETHNICITY IN INDIA)

हालाँकि भारत देश में प्रजातीय संघर्ष की कोई विशेष समस्या विद्यमान नहीं है, फिर भी प्रजातीय विविधता से भारत में पाई जाने वाली नृजातीय विविधता के बारे में पता चलता है। **सर हर्बर्ट रिजले** ने भारत को प्रजातियों का अजायबघर कहा है। इसीलिए आज भारत में विश्व की समस्त प्रजातियों के लोग यहाँ रहते हैं और वे आपस में ऐसे मिल-जुल गये हैं कि किसी भी प्रजाति के लिए अपनी विशेषताएँ अलग रख पाना सम्भव नहीं है। वस्तुत: भारत में प्रजातियों का आगमन प्रागैतिहासिक काल से ही रहा है। इसके लिए भौगोलिक कारक सर्वाधिक उत्तरदायी रहा है।

प्रजाति एक जैविक संकल्पना है। यह मनुष्य के उस समूह को व्यक्त करती है जिनमें शारीरिक तथा मानसिक लक्षण समान होते हैं, ये लक्षण उन्हें पैतृकता के आधार पर मिलते हैं। शरीर के रंग, खोपड़ी एवं नासिका की बनावट तथा अन्य अंगों की बनावट अथवा संरचना के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रजातीय समूहों को देखते ही पहचाना जा सकता है। प्रजातीय दृष्टि से भारतीय समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित हो गया है। पूरे भारतवर्ष में विश्व की सभी प्रजातियों की विशेषताओं वाले लोग पाये जाते हैं, जिनमें शारीरिक दृष्टि से भिन्नता पायी जाती है। ये प्रजातियाँ द्रावेडियन, इण्डो-आर्यन, मंगोलॉयड, इण्डो-द्रावेडियन, मंगोल-द्रावेडियन, सीरियन तथा टर्की-ईरानियन हैं।

नृजातीयता/प्रजाति का अर्थ और परिभाषाएँ
(MEANING AND DEFINITIONS OF ETHNIC)

नृजातीयता जैविक संकल्पना है, जिसका प्रयोग सामान्य रूप से उस वर्ग के लिए किया जाता है, जिसके अन्दर सामान्य गुण हैं या कुछ गुणों द्वारा शारीरिक लक्षणों में समानता पायी जाती है। जातीयता की विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं—

होबेल (Hoebel) के शब्दों में, "प्रजाति एक प्राणिशास्त्रीय अवधारणा है। यह वह समूह है जो कि शारीरिक विशेषताओं का विशिष्ट योग धारण करता है।"

क्रोबर (Kroeber) के शब्दों में, "प्रजाति एक प्रमाणित प्राणिशास्त्रीय अवधारणा है। यह वह समूह है जो कि वंशानुक्रमण, नस्ल अथवा प्रजातीय गुणों या उपजातियों के द्वारा जुड़ा है।"

रेमण्ड फिर्थ (Raymond Firth) के शब्दों में, "प्रजाति व्यक्तियों का वह समूह है जिसके कुछ वंशानुक्रमण द्वारा निर्धारित सामान्य लक्षण हैं।"

बेनेडिक्ट (Benedict) के शब्दों में, "प्रजाति पैतृकता द्वारा प्राप्त लक्षणों पर आधारित एक वर्गीकरण हैं।"

प्रजाति की विशेषताएँ (Characteristics of Ethic)

प्रजाति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) प्रजाति का अर्थ जन-समूह से होता है। अतएव इसमें पशुओं की नस्लों को शामिल नहीं किया जाता है।

(ii) प्रजातीय विशेषताएँ प्रजातीय शुद्धता की स्थिति में अपेक्षाकृत स्थायी होती हैं।

(iii) मानव समूह से तात्पर्य कुछ व्यक्तियों से नहीं है, अपितु प्रजाति में मनुष्यों का बड़ी संख्या में होना अनिवार्य है।

(iv) मानव समूह में एक जैसे शारीरिक लक्षणों का होना आवश्यक है। ये लक्षण वंशानुक्रमण के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। शारीरिक लक्षणों के आधार पर इन्हें दूसरी प्रजातियों से अलग किया जाता है।

भारत की प्रमुख प्रजातियाँ/नृजातियाँ
(MAJOR ETHNICITIES OF INDIA)

भारत में विभिन्न प्रजातियों के लोग रहते हैं। सबसे पहले **रिजले** ने भारत में प्रजातीय तत्वों का अध्ययन किया और बाद में हट्टन, गुहा, मजूमदार, सरकार आदि विद्वानों ने भारत में पायी जाने वाली प्रजातियों के अध्ययन में विशेष रुचि दिखायी। भारत में कितनी प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इसके सन्दर्भ में विद्वानों में सहमति नहीं है। प्रमुख विद्वानों का वर्गीकरण निम्नवत् है—

I. रिजले का वर्गीकरण (Classification of Risley)

रिजले ने भारतीय जनसंख्या में निम्नांकित प्रजातियों के तत्वों का वर्णन किया है—

1. द्रावेडियन—यह प्रजाति भारत की सबसे प्राचीन प्रजाति है। हालाँकि यह प्रजाति वर्तमान में स्वतन्त्र रूप में तो विद्यमान नहीं है, लेकिन इसके कुछ लक्षण कहीं-कहीं पर देखे जा सकते हैं। इस प्रजाति के लोग अधिकांशतः हैदराबाद, मद्रास, मध्य प्रदेश और नागपुर में पाये जाते हैं। इन लोगों के बाल अर्द्ध-गोलाकार लटों में विभाजित होते हैं। इनके सिर चौड़े, होंठ मोटे, नाक चौड़ी व त्वचा गहरे काले रंग की होती है।

2. मंगोलॉयड—इस प्रजाति के लोग अधिकांशतः हिमालय के मैदानों, असम और नेफा में पाये जाते हैं। इनकी नाक छोटी, होंठ मोटे, सिर लम्बे तथा चौड़े, चेहरा चपटा, त्वचा पीली अथवा भूरे रंग की होती है।

3. मंगोल-द्रावेडियन—इस प्रजाति के लोग अधिकांशतः बंगाल और उड़ीसा में पाये जाते हैं।

4. आर्यो-द्रोवेडियन—इस प्रजाति के लोग उत्तर प्रदेश, राजस्थान और बिहार में पाये जाते हैं।

5. साइथो-द्रोवेडियन—इस प्रजाति के लोग मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में पाये जाते हैं।

6. इण्डो-आर्यन—इस प्रजाति के अधिकतम लोग पंजाब, कश्मीर व राजस्थान में पाये जाते हैं।

7. तुर्को-इरानियन—इस प्रजाति के लोग उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में पाये जाते हैं।

II. गुहा का वर्गीकरण (Guha's Classification)

गुहा के अनुसार भारत में निम्नलिखित प्रजातियों के तत्व देखे जा सकते हैं—

1. नीग्रीटो (Negrito),
2. प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड (Proto-Australoid),
3. मंगोलॉयड (Mongoloid) :
   (i) पेली मंगोलॉयड (Palaeo Mongoloid)—लम्बे सिर वाले, चौड़े सिर वाले।
   (ii) तिब्बती मंगोलॉयड (Tibeto-Mongoloid)

4. भूमध्यसागरीय अथवा मेडिटेरेनियन (Mediterranean) :
   (i) पेली मेडिटेरेनियन (Palaeo Mediterranean)
   (ii) मेडिटेरेनियन (Mediterranean)
   (iii) ओरियण्टल टाइप (Oriental Type)
5. पश्चिमी चौड़े सिर वाले (Western Brachy Cephelic) :
   (i) अल्पाइनॉयड (Alpinoid)
   (ii) डिनारिक (Dinaric)
   (iii) अरमीनॉयड (Armenoid)
6. नार्डिक (Nordic)

III. हट्टन का वर्गीकरण (Hutton's Classification)

हट्टन ने भारतीय नृजातियों को निम्नलिखित श्रेणी में विभक्त किया है—

1. नीग्रीटो,
2. प्रोटो-आस्ट्रेलॉयड,
3. मेडिटेरेनियन,
4. इण्डो-आर्यन,
5. अल्पाइन की अरमीनॉयड शाखा, और
6. मंगोलॉयड।

रिजले, गुहा और हट्टन के वर्गीकरण से हमें यह ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में विश्व क समस्त नृजातियों के तत्व पाये जाते हैं। भारत में जितनी भी नृजातियों के लोग बाहर से आये, वे यहाँ प बसते गये। कई नृजातियों में आपस में सहवास के कारण भारत देश नृजातियों का ऐसा मिश्रण बन ग कि किसी भी एक नृजाति की शुद्ध विशेषता मिलना मुश्किल है। इसके फलस्वरूप, भारत में नृजातिय का निर्धारण भी आसानी से नहीं किया जा सकता। अतएव, भारत को 'नृजातियों का अजायबघर' कह पूर्ण रूप से सही है।

IV. हेड्डन का वर्गीकरण (Heddon's Classification)

हेड्डन ने भारत की जनसंख्या में निम्न नृजातियों के तत्व पाये जाने का वर्णन किया है—

1. प्राग्-द्रावेडियन,
2. द्रावेडियन,
3. इण्डो-अल्पाइन,
4. मंगोलॉयड एवं
5. इण्डो-आर्यन।

अभ्यास प्रश्न
(EXERCISE QUESTIONS)

❑ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. छत्तीसगढ़ के जनांकिकीय पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए। (Describe the demographic profile of Chhattisgarh.)
2. भौगोलिक आधार पर जनजातियों के वर्गीकरण की विवेचना कीजिए। (Discuss the classification of Tribes on geograhical basis.)
3. नृजातीयता का क्या अर्थ है? नृजातीयता के आधार पर जनजातियों के वर्गीकरण की विवेचना कीजिए। (What is the meaning of Ethnicity ? Discuss the classification of Tribes on the basis of Ethnicity.)

9 छत्तीसगढ़ के विशेष रूप से पिछड़े जनजातीय समूह [PARTICULARLY VULNERABLE TRIBAL GROUPS OF CHHATTISGARH]

छत्तीसगढ़ की विशेष पिछड़ी जनजातियाँ
(SPECIAL BACKWARD TRIBES OF CHHATTISGARH)

भारत सरकार के द्वारा अनुसूचित जनजातियों में से कुछ निश्चित जनजातीय समुदायों को विशेष मापदण्डों; जैसे—स्थिर अथवा कम होती जनसंख्या, न्यून साक्षरता दर, कृषि की आदिम तकनीक व आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर देश में 75 जनजाति समुदायों को विशेष पिछड़ी जनजाति समूह घोषित किया है। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के समय इनकी संख्या 52 थी, जो छठवीं पंचवर्षीय योजना में बढ़कर 72 तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना के समय 74 संख्या हो गयी थी। वर्तमान में 12वीं पंचवर्षीय योजना के समय इनकी संख्या 75 है। ये 16 राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों में पाये जाते हैं। अविभाजित मध्य प्रदेश की 42 अनुसूचित जनजातियों में से 6 जनजातियाँ विशेषत: कमजोर जनजाति समूह में आती थीं, जबकि छत्तीसगढ़ की कुल 42 अनुसूचित जनजातियों में से 5 जनजातियाँ विशेषत: कमजोर जनजाति समूह में आती हैं।

अनुच्छेद 342 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने छत्तीसगढ़ की 5 जनजातियों को ही विशेष पिछड़ी जनजाति में सम्मिलित किया है, जिसमें अबूझमाड़िया, बैगा, बिरहोर, पहाड़ी कोरवा और कमार सम्मिलित हैं। राज्य शासन ने सन् 2002-03 में पंडो और भुंजिया जनजातियों को भी विशेष पिछड़ी जनजातियों के समतुल्य मानते हुए अलग से विशेष पिछड़ी जनजातियों में सम्मिलित किया है।

परिभाषा (Definition)—"अनुसूचित जनजातियों में से कुछ निश्चित जनजातीय समुदाय जिन्हें विशेष मापदण्डों; जैसे—स्थिर अथवा कम होती जनसंख्या, न्यूनतम साक्षरता दर, कृषि की आदिम तकनीक, पृथक्कीकरण तथा आर्थिक पिछड़ेपन के आधार, विशेष पिछड़ी जनजाति की संज्ञा प्रदान की गयी है।"

केन्द्र सरकार द्वारा घोषित विशेष पिछड़ी जनजाति (Scheduled Tribes Declared by the Central Government)

केन्द्र सरकार द्वारा घोषित विशेष पिछड़ी जनजातियाँ निम्नलिखित हैं—

1. अबूझमाड़िया,
2. पहाड़ी कोरवा,
3. बैगा,
4. बिरहोर,
5. कमार।

उपर्युक्त जनजातियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा रहा है—

1. अबूझमाड़िया
(ABUJHMADIA)

अबूझमाड़िया जनजाति छत्तीसगढ़ राज्य के नारायणपुर जिले के अबूझमाड़ क्षेत्र में रहती है। ये जनजाति शहरी और ग्रामीण समाज से अलग अबूझमाड़ क्षेत्र के गहन वन तथा पहाड़ों के परिपूर्ण



प्राकृतिक वातावरण में रहती है। इस क्षेत्र और क्षेत्रवासियों को अबूझमाड़ एवं अबूझमाड़िया शब्द बाह्य समाज द्वारा दिया गया है। अबूझमाड़िया जनजाति के लोग स्वयं को पर्वतीय भूमि के निवासी कहते हैं। अबूझमाड़ शब्द का सबसे पहले प्रयोग कैप्टन सी.एल.आर. ग्लसफर्ड ने अपनी रिपोर्ट में 'उबूझमार्ड' शब्द के रूप में किया था।

शाण्ट (1870) ने गजेटियर में इस क्षेत्र के लिए 'माड़ियान' अथवा 'अबूझमार्ड' शब्द का प्रयोग किया था।

हिस्लॉप (1876) ने **हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कॉस्ट्स** भाग-2 में अबूझमाड़ शब्द का प्रयोग किया। अबूझमाड़ शब्द हिन्दी भाषा के अबूझ यानी अनजान शब्द और माड़ यानी पहाड़ी भूमिवाचक गोंडी शब्दों से मिलकर बना है।

अबूझमाड़िया जनजाति की उत्पत्ति के बारे में कोई ऐतिहासिक अभिलेख नहीं है। किंवदन्तियों के आधार पर माड़िया गोंड जाति के प्रेमी युगल समाज के भय से भागकर इस दुर्गम क्षेत्र में आये और विवाह करके वहीं बस गये। इन्हीं के वंशज अबूझमाड़ क्षेत्र में रहने के कारण अबूझमाड़िया कहे जाने लगे। प्राय: अबूझमाड़ क्षेत्र में रहने वाले माड़िया गोंड को अबूझमाड़िया कहते हैं। अबूझमाड़िया जनजाति का निवास क्षेत्र अबूझमाड़ नारायणपुर जिले के ओरछा तहसील और विकासखण्ड के अन्तर्गत है।

सन् 2015-16 में आदिमजाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान रायपुर द्वारा कराये गये अबूझमाड़िया विशेष पिछड़ी जनजाति के मूलभूत सर्वेक्षण के अनुसार अबूझमाड़िया जनजाति नारायणपुर जिले के नारायणपुर विकासखण्ड के 14 एवं ओरछा अबूझमाड़ विकासखण्ड के 235 गाँव कुल 249 गाँव में निवास कर रहे हैं, जिसमें ओरछा क्षेत्र के कुछ गाँव वीरान हैं। इस सर्वेक्षण के अनुसार अबूझमाड़िया जनजाति की जनसंख्या 23,330 है जिसमें पुरुषों की संख्या 11,456 और महिलाओं की संख्या 11,874 है। यहाँ पुरुष-महिला लिंगानुपात 1036 है। अबूझमाड़िया जनजाति के कुल 4,786 परिवार हैं।

भौतिक संस्कृति–अबूझमाड़िया जनजाति के गाँव छोटे और विरल जनसंख्या के होते हैं। इनके गाँव पहाड़ी ढलान अथवा पहाड़ों के निकट समतल स्थान पर बसे होते हैं। इनके मकान अस्थायी होते हैं और ये प्राय: 5-7 वर्षों में पुन: नया मकान बना लेते हैं। इनके मकान पाँच हिस्सों में विभाजित रहते हैं, जिन्हें अहगी, अहपानी, आगता, सेंटम और वेंडूकुरमा कहा जाता है। इस प्रजाति के आदिवासी जंगल में एक अलग झोपड़ा बनाकर रहते हैं, जिसे सिहारी कहते हैं।

इनके घर छोटे झोपड़ीनुमा लकड़ी और मिट्टी से बने होते हैं, जिनके ऊपर घास-फूस का छप्पर होता है। इनका घर दो-तीन कमरे का बना होता है। ये अपने घर का स्वयं निर्माण करते हैं।

पहले अबूझमाड़िया गाँव पेंदा खेती स्थानान्तरित कृषि के कारण निश्चित समय में नियत भू-भाग में स्थानान्तरित होते थे, लेकिन वर्तमान में शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, पेयजल, राशन दुकान सम्बन्धी अधोसंरचनात्मक सुविधाओं के विकास और पेंदा खेती स्थानान्तरित कृषि की कमी के कारण गाँव की बसावट स्थाई हो रही है। गाँव में ग्राम देवी और दूसरे देवी-देवताओं का मन्दिर तथा गाँव के बीच में घोटुल युवागृह होता है। इनके चारों तरफ लकड़ी के खम्भों का घेरा बना होता है। आवास से कुछ दूरी पर एक कमरा बना होता है, जिसे 'वंडे कुरमा' कहा जाता है। यहाँ पर रजस्वला और प्रसूता स्त्री को रखा जाता है। इस कमरे में पुरुषों का प्रवेश वर्जित होता है।

भाषा–अबूझमाड़िया जनजाति में गोंडी बोली का स्थानीय स्वरूप 'माड़ी' प्रचलित है। इनकी बोली द्रविड़ भाषा समूह में आती है। ग्रियर्सन की लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया भाग-4 में 'माड़िया' बोली को 'गोंडी' के स्थानीय स्वरूप के रूप में वर्णित किया गया है।

गोदना–अबूझमाड़िया महिलाओं को शरीर में गोदना (टैटू) गुदवाना अनिवार्य है। ये महिलाएँ गोदना को स्थायी गहना मानती हैं। गोदना प्राय: मस्तक, नाक के पास, ऊपरी भाग तथा ठुड्ढी पर गुदवाया जाता है।

भोजन–इनका मुख्य भोजन चावल, मड़िया, कोदो, कुटकी, मक्का, मूँग, उड़द एवं कुल्थी दाल और भात है। इनके द्वारा शराब तथा सल्फी का उपयोग जन्म, विवाह और मृत्यु सभी अनुष्ठानों में अनिवार्य पेय के रूप में किया जाता है।

जन्म संस्कार—अबूझमाड़िया जनजाति में जन्म को सामान्य प्राकृतिक घटना मानते हैं। मासिक चक्र के रुक जाने पर गर्भधारण होना मानते हैं। इस जनजाति में गर्भवती महिला को नए या बढ़ते फूल, फले शाखा के तोड़ने पर निषेध होता है। प्रसव क्रिया घर के समीप बने झोंपड़ी 'कुरमा लोन' में होती है। अबूझमाड़िया पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, इसलिए नवजात शिशु के नामकरण के पहले कई विधियों द्वारा यह ज्ञात करते हैं कि नवजात शिशु के रूप में किस पूर्वज का पुनर्जन्म हुआ है। जिस पूर्वज का पुनर्जन्म ज्ञात होता है, उसके पिछले जन्म के नाम के आधार पर नवजात शिशु का नामकरण संस्कार करते हैं।

विवाह संस्कार—अबूझमाड़िया जनजाति में एकल अथवा बहुपत्नी विवाह का प्रचलन है। इन लोगों में विवाह मई-जून माह में 'ककसाड़ त्यौहार' के बाद किये जाते हैं। इनमें वधू मूल्य प्रथा का प्रचलन है। इस जनजाति में ममेरे-फुफेरे विवाह को अधिमान्यता है। विवाह में बहिर्विवाह सम्बन्धी नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है। अबूझमाड़िया जनजाति में बिथेर (सहपलायन विवाह), आड़ियत्ता (घुसपैठ विवाह) तथा चूड़ी पहनाना (विधवा/परित्यक्ता पुनर्विवाह) की प्रथा का प्रचलन है।

अन्तिम संस्कार—अबूझमाड़िया जनजाति में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर अन्तिम संस्कार के लिए शवदाह और दफनाने की प्रक्रिया का प्रचलन है। अगर व्यक्ति की मृत्यु प्राकृतिक रूप से हुई होती है, तो शव को दफनाया जाता है और अगर मृत्यु अप्राकृतिक रूप से हुई है, जैसे—सामान्य दुर्घटना, बीमारी अथवा वन्य प्राणी के हमले द्वारा, तो शव को जलाया जाता है। अप्राकृतिक मृत्यु की स्थिति में शव का सामान्य शमशान की जगह दूर जंगल में अन्तिम संस्कार किया जाता है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के निश्चित समय बाद मृतक स्तम्भ स्थापित किया जाता है। मृतक स्तम्भ के लिए गोत्र के अनुसार भूमि निश्चित होती है। अबूझमाड़िया जनजाति के लोगों में यह विश्वास है कि मृतक पूर्वजों के स्तम्भ के आकार में वृद्धि होती है।

सामाजिक जीवन—अबूझमाड़िया समाज में मूल इकाई 'परिवार' होता है। इस जनजाति में गठन के आधार पर केन्द्रीय, संयुक्त और विस्तृत परिवार होते हैं। इनमें वैवाहिक स्थिति के आधार पर एकल विवाही और बहुपत्नी विवाही परिवार पाये जाते हैं। अबूझमाड़िया परिवार पितृसत्तात्मक परिवार है। इस जनजाति में आवास के आधार पर पितृस्थानीय और नव-स्थानीय परिवार होते हैं। यह जनजाति कई वंशों में विभाजित है और वंश विभिन्न गोत्रों में विभाजित हैं, जिन्हें 'गोती' कहा जाता है। इनके प्रमुख गोत्र इस प्रकार हैं—अक्का, मंडावी, उसेंडी, धुर्वा, गुंठा, मरका, अटमी, थोंडा, बड्डे एवं लखमी। सम्पूर्ण अबूझमाड़िया समाज गोत्र, वैवाहिक और सामाजिक सम्बन्धों के नियमन हेतु दो भागों में विभक्त है—दादाभाई एवं अक्कोमामा। दादाभाई शब्द का प्रयोग रक्त सम्बन्धी गोत्र के लिए होता है और अक्कोमामा शब्द का प्रयोग वैवाहिक सम्बन्धी गोत्र के लिए होता है।

अबूझमाड़िया जनजाति में घोटुल युवाग्रह होता है। इस घोटल में लड़के-लड़कियों की सदस्यता 8-10 वर्ष की उम्र से शुरू होती है और उनकी यह सदस्यता विवाह तक रहती है। अबूझमाड़िया घोटुल में लड़कों को 'लेयोर' और लड़कियों को 'लयस्कू' कहा जाता है। घोटुल का वरिष्ठ सदस्य 'पटेल' के सहयोग के लिए सदस्यों में से एक युवक 'कोटवार' और एक युवती 'कोटवारिन' होते हैं।

धार्मिक जीवन—अबूझमाड़िया धर्म आत्मा, गोत्र, पूर्वज और प्राकृतिक शक्तियों व विश्वास पर आधारित है। इस जनजाति का निवास क्षेत्र अबूझमाड़ विभिन्न परगनों में विभक्त है। अबूझमाड़िया ग्राम स्तर पर दो तरह के देवी-देवताओं की पूजा आराधना करते हैं। तालुर स्तर को स्थानीय स्तर कहा जा सकता है। तालुर का अर्थ है—वह भूमि जहाँ तक उस गाँव का भू-अधिकार क्षेत्र होता है। अबूझमाड़िया परिवार के आवास में एक कमरा गृह देवता अथवा मृत पूर्वजों और 'अनाल पेन' के लिए होता है। त्यौहार और अन्य विशेष अवसरों पर 'अनाल पेन' को खाद्यान्न, सल्फी, शराब व अण्डे अथवा मुर्गी का चूजा बलि स्वरूप दिया जाता है। अबूझमाड़िया लोग उपर्युक्त देवी-देवताओं के अलावा भंगाराम, भैरभदेव, करंगा और अन्य स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा करते हैं।

आर्थिक जीवन—अबूझमाड़िया जनजाति का आर्थिक जीवन वनोपज संकलन, पशुपालन, शिकार, आदिमकृषि और परम्परागत कृषि पर आधारित है। इसमें परिवार उत्पादन की इकाई के रूप में कार्य

करता है। अबूझमाड़िया सदस्य वनों से कन्दमूल और वनोपज संकलन करते हैं। संकलन का कार्य परिवार के समस्त अर्द्ध-शासकीय तथा कार्यशील सदस्य करते हैं। इस जनजाति के पुरुष सदस्य सकल और सामूहिक शिकार करने में निपुण होते हैं।

कृषि अबूझमाड़िया जनजाति की आर्थिक क्रियाओं का सबसे अहम् भाग है। वर्तमान समय में अबूझमाड़िया जनजाति की कृषि तकनीक तीन प्रकार की हैं—

(i) अबूझमाड़िया जनजाति द्वारा पहाड़ों के ढलानों में वृक्ष काटकर किये जाने वाले स्थानान्तरित कृषि को पेंदा कृषि कहते हैं।

(ii) पहाड़ के नीचे समतल क्षेत्र में की जाने वाली कृषि को दिप्पा कृषि कहा जाता है। इसमें वन से वृक्ष अथवा सूखी शाखाएँ लाकर जला दिया जाता है।

(iii) अबूझमाड़िया जनजाति हल-बैल के द्वारा स्थाई कृषि करते हैं।

राजनीतिक जीवन—अबूझमाड़िया राजनैतिक संगठन वंश परम्परा पर आधारित है। इनके ग्राम कई पारों या टोलों में दूर-दूर बसे होते हैं। पारा या टोला के प्रमुख को पंच अथवा पारा मुखिया कहा जाता है। विभिन्न पारों से मिलकर बने ग्राम के प्रमुख को पटेल कहते हैं। वह पंचों का नेतृत्व करता है। पटेल का कार्य ग्राम के विवादित मुद्दों और समस्याओं को पंच और बुजुर्गों अथवा वरिष्ठों के समूह की सहायता से समाधान करना है। कई ग्रामों से मिलकर 'परगना' बना होता है। उसके प्रमुख को 'परगना मांझी' कहते हैं। 'परगना मांझी' परगना के ग्रामों के पटेलों का नेतृत्व करता है। परगना मांझी का मुख्य कार्य अपने परगना क्षेत्र में कानून व्यवस्था बनाये रखना है।

लोक कला—अबूझमाड़िया जनजाति के स्त्री-पुरुष को नाच-गाने का बहुत शौक होता है। कई मेला और मड़ई, तीज-त्योहारों में युवक-युवतियाँ अपने रीति-रिवाजों, संस्कृति के साथ लोक नृत्य-गायन करते हैं। वाद्ययन्त्र ढोल, मांदर, बाँसुरी, नगाड़ा, तुड़बुडी के साथ गेड़ीनाच, काकसर व रिलो नृत्य किया जाता है।

2. पहाड़ी कोरवा
(PAHADI KORWA)

पहाड़ी कोरवा कोलारियन भाषा समूह की जनजाति है। यह 'कोरवी' बोली बोलते हैं। यह जनजाति विवाह के मौके पर दमनच नृत्य करते हैं, जिसे भय नृत्य भी कहते हैं। इनमें ढुकु विवाह प्रचलित है। इन्हें केन्द्र सरकार द्वारा विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया गया है। कोरवा जनजाति की कुल जनसंख्या 44,026 है। इस जनसंख्या में पुरुष जनसंख्या 22,196 है और महिला जनसंख्या 21,830 है। इनका स्त्री-पुरुष लिंगानुपात 984 है।

पहाड़ी कोरवा जनजाति की उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, परन्तु कोलोनिल डाल्टन ने इन्हें कोलारियन समूह से निकली जाति माना है। किंवदन्तियों के आधार पर अपनी उत्पत्ति राम-सीता से मानते हैं। पहाड़ी कोरवा छत्तीसगढ़ राज्य के सरगुजा, बलरामपुर, जशपुर और कोरबा के पहाड़ियों व घाटियों में जंगलों में निवास करते हैं। पहाड़ी कोरवा का घर प्रायः एक कमरे के रूप में निर्मित होता है। इनके पास दैनिक उपयोग की वस्तुएँ सीमित उपलब्ध रहती हैं। आज अधिकतम पहाड़ी कोरवा परिवार को वन-भूमि पर बेजा और कुछ लोगों को शासन द्वारा भूमि पट्टे पर दी गई है। यहाँ की महिलाएँ शृंगार के रूप में चन्दा, सूरज, साँप, बिच्छू इत्यादि आकृति के गोदना गोदवाती हैं।

जीवन संस्कार—इस जनजाति के लोग शिशु जन्म को ईश्वर की देन मानते हैं। प्रसव के लिए पत्तों से निर्मित अलग झोपड़ी बनाते हैं, जिसे कुम्बा कहा जाता है। प्रसव इसी झोपड़ी में स्थानीय दाई की मदद से कराते हैं, जिसे दगरिन कहा जाता है। इनमें विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की तरफ से होता है। विवाह में वधू के पिता को 'सुक' के रूप में अनाज, दाल, तेल, गुड़ और 40 रुपये दिये जाते हैं।

इन लोगों में किसी सदस्य की मृत्यु होने पर मृतक को दफनाया जाता है तथा दसवें दिन स्नानादि करके देवी-देवता और पूर्वजों की पूजा की जाती है।

सामाजिक जीवन—यह समाज पितृसत्तात्मक है। कोरवा जनजाति बुन्दरजीवा और पहाड़िया दो उपजाति में विभाजित है। जो लोग मैदानी क्षेत्रों में रहते हैं, उन्हें बुन्दरजीवा कहते हैं और जो घने जंगलों पहाड़ों में रहते हैं, उन्हें पहारिया या पहारपटिया कमार कहते हैं। कमार जनजाति पितृवंशीय एवं पितृस्थानिक समुदाय है।

धार्मिक जीवन—पहाड़ी कोरवा जनजाति के लोग अपने परम्परागत धर्म में विश्वास रखते हैं। इनका जीववाद में विश्वास है। इनके द्वारा बीज बोने के अवसर पर बीज बोहनी तथा धान की फसल पक में आने पर छेरता परब मनाया जाता है। ये लोग करमा, बिहाव, परधनी एवं रहस इत्यादि लोक नृत्यों के साथ लोकगीत भी गाते हैं। इनके देवी-देवताओं में कचना धुरवा, भीमादेव एवं हिंगलाज की पूजा की जाती है।

आर्थिक जीवन—कमार जनजाति का आर्थिक जीवन मुख्यत: वनों पर निर्भर है। पहले यह समुदाय एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होकर वनों को जलाकर उस पर अनाज के बीजों को छिड़ककर आदिम कृषि करते थे। जिसे 'बेवरा खेती' अथवा 'दाहिया खेती' कहते हैं। कमार जनजाति कृषि के अलावा मुख्य रूप से अपने परम्परागत व्यवसाय बाँस-बर्तन के निर्माण पर जीविकोपार्जन के लिए निर्भर है।

राजनीतिक जीवन—'जाति पंचायत' पहाड़ी कोरवा की अपनी व्यवस्था है, जिसका मुख्य कार्य पारम्परिक सामाजिक प्रथाओं का पालन करवाना है। इसका प्रमुख मुखिया कहलाता है। जाति पंचायत के मुखिया का पद सामान्यत: वंशानुगत होता है, जो सामान्य रूप से गाँव का 'पटेल' ही होता है। गाँव में पटेल की सामाजिक स्थिति सबसे उच्च मानी जाती है। वह गाँव के स्वजातीय समाज तथा शासकीय व्यवस्था के मध्य एक मध्यस्थ का कार्य सम्पादित करता है।

पहाड़ी कोरवा के विकास के लिए और जीवन स्तर में वृद्धि करने के लिए तथा इन्हें विकास की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए शासन द्वारा पहाड़ी कोरवा विकास अभिकरण का गठन किया गया है। उनके सम्पूर्ण विकास के दृष्टिकोण से कई योजनाओं का संचालन किया जा रहा है; जैसे—कौशल विकास, आवास योजना, शुद्ध पेयजल, स्वास्थ्य के दृष्टिगत आँगनबाड़ी और स्वास्थ्य केन्द्रों व शैक्षणिक विकास के लिए प्राथमिक शाला इत्यादि। इन योजनाओं का प्रभाव पहाड़ी कोरवा जनजाति के परिवारों में भी परिलक्षित हो रहा है।

3. बैगा

(BAIGA)

बैगा आर्य भाषा समूह की जनजाति है। इसका शाब्दिक अर्थ 'पुरोहित' है। इन्हें 'पण्डा' भी कहते हैं। बैगा अपने आपको गोंड न मानकर गोंडों के पुजारी के रूप में काम करते हैं। बैगा लोगों को जड़ी-बूटियों अर्थात् वनौषधि का काफी अच्छा ज्ञान होता है। इन्हें केन्द्र सरकार के द्वारा विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया गया है। बैगा जनजाति विश्व की सर्वाधिक गोदना प्रिय जनजाति है। बैगा जनजाति छत्तीसगढ़ के मैकल श्रेणी यानी कवर्धा, बिलासपुर, राजनांदगाँव व मुंगेली जिलों में रहती है। बैगा जनजाति की उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। ऐसा माना जाता है कि बहुत पहले एक देवता थे, जिनका नाम नागा बैगा था, नागा बैगा भगवान शंकर का रूप है। नागा बैगा के द्वारा बनाये गये सन्तान बैगा कहलाते हैं। बैगा जनजाति के लोग पहाड़ी और जंगली क्षेत्र के दुर्गम स्थानों में गोंड, भूमिया इत्यादि के साथ रहते हैं। इनके घर मिट्टी के बने होते हैं, जिस पर घास-फूस या खपरैल की छप्पर होती है। ये लोग दीवार की पुताई सफेद अथवा पीली मिट्टी से करते हैं।

जनगणना 2011 के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य में बैगा विशेष पिछड़ी जनजाति की जनसंख्या 89,744 है। इसमें पुरुषों की जनसंख्या 44,847 है तथा महिलाओं की जनसंख्या 44,897 है। इनमें स्त्री-पुरुष लिंगानुपात 1001 है। बैगा विशेष पिछड़ी जनजाति की साक्षरता दर 32.17 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 40.01 है और महिला साक्षरता 24.34 प्रतिशत है।



शारीरिक संस्कृति—बैगा जनजाति की महिलाओं की विशेष पहचान उनके माथे पर बीच में 'V' आकृति तथा उसके दोनों तरफ चिड़ी के निशान और शरीर के कई अंगों में, जैसे—गर्दन के नीचे, बाँह में, कलाई में, पैर में चिड़ी, मछली के काँटे के आकार की आकृति के गोदना प्रमुख हैं। ऐसा माना जाता है कि शरीर के गोदने मृत्यु के बाद भी उनके साथ जाते हैं।

बैगा पुरुष कमर के नीचे एक वस्त्र तथा सिर पर एक कपड़े का टुकड़ा बाँधते हैं तथा महिलाएँ घुटने तक पहनती हैं, इनके परम्परागत वस्त्र को 'कपची' कहते हैं। इनका मुख्य भोजन कोदो, कुटकी का भात, उड़द, मूँग, पेज, अरहर की दाल तथा मौसमी सब्जी इत्यादि है। यह शाकाहारी व माँसाहारी दोनों तरह के होते हैं। इनका पये पदार्थ 'ताड़ी' है।

जीवन संस्कार—बैगा जनजाति में जन्म संस्कार छठी, शुद्धिकरण और नामकरण के रूप में मनाया जाता है। शिशु जन्म के दौरान प्रसव कराने वाली महिला को गौजी कहते हैं। इन लोगों में वैवाहिक कार्य स्वजातीय जानकार व्यक्ति के द्वारा ही सम्पन्न करवाया जाता है, जिसे दोषी कहा जाता है। इस जनजाति में शवों को जलाने की परम्परा है, लेकिन आकस्मिक मृत्यु, दुर्घटना अथवा महामारी से मृत्यु होने पर या बच्चे अथवा अविवाहित व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर शव को दफनाया जाता है। इनमें शुद्धिकरण संस्कार को 'मादी' कहा जाता है।

सामाजिक जीवन—बैगा समुदाय के लोग पारम्परिक रूप से सामूहिक जीवन गुजारते हैं। बैगा जनजाति के लोगों के सामाजिक संगठन की इकाई 'परिवार' है। बैगा लोगों का सामाजिक संगठन आन्तरिक रूप से सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित है। बैगा समाज में परिवार का विशेष स्थान है। परिवार पितृसत्तात्मक होता है, स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक होती है। इस जनजाति में विभिन्न अन्तःविवाही उपजातियाँ पाई जाती हैं। इनकी प्रमुख उपजाति-बिंझवार, भारोटिया, नरोटिया, रामभैना, कटभैना, दुधभैना, गोंडभैना, कोडवान, कुरका बैगा, सावत बैगा इत्यादि हैं। उपजातियाँ भिन्न-भिन्न बहिर्विवाही गोती अर्थात् गोत्र में विभाजित हैं।

बैगा जनजाति में अन्तर्विवाह की परम्परा भी है। इनमें मामा-बुआ के लड़के-लड़कियों के मध्य आपस में विवाह हो जाता है। वधू पक्ष को वर पक्ष के द्वारा वधू धन (मूल्य) के रूप में दाल, चावल, हल्दी, तेल, गुड़ तथा नकद कुछ रकम दी जाती है। इस जनजाति में निम्नलिखित विवाह प्रचलित हैं—लमसेना विवाह, चोरी विवाह, पैठू विवाह, पुनर्विवाह, गुरावट विवाह इत्यादि।

धार्मिक जीवन—बैगा जनजाति के लोग अपने विभिन्न तीज-त्यौहार, जीवन संस्कार अथवा किसी भी शुभ कार्य का आरम्भ अपने कुल देवी-देवता की पूजा-अर्चना के बाद करते हैं। इनके प्रमुख देवी-देवता बुढ़ा देव, ठाकुर देव, नारायण देव, भीमसेन, घनश्याम देव, धरती माता, ठकुराइन माई, खैरमाई, रतमाई, बाघदेव, बूढ़ीमाई, दुल्हादेव इत्यादि हैं। इस जनजाति के लोग नया गाँव बसाने और महामारी आदि के प्रकोप से गाँव वालों को बचाने के लिए मन्त्र पाठ द्वारा गाँव को बाँधने का भी कार्य करते हैं। ये लोग अपने आराध्य देव को प्रसन्न करने हेतु बलि चढ़ाते हैं। इन लोगों में बोंगावाद, टेबू और टोटम का प्रचलन है। ये जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, भूत-प्रेत में अत्यधिक विश्वास करते हैं। इनके देवी-देवता को पुजारी और भूत-प्रेत भगाने वाले को 'भूमका' कहा जाता है।

आर्थिक जीवन—बैगा जनजाति के लोगों की आजीविका का साधन कृषि और वनोपज संग्रहण है। ये प्रकृति पर आश्रित हैं। इस जनजाति में 'हल छूना निषेध' है। इनका मानना है कि खेतों में हल चलाने से धरती माता को पीड़ा होती है। पूर्व में ये लोग जमीन बदल-बदल कर स्थानान्तरित कृषि करते थे, किन्तु अब स्थाई रूप से कृषि करते हैं। बैगा जनजाति की अर्थव्यवस्था मिश्रित है। इस जनजाति के लोग पूर्व में जंगल काटकर उसे जलाकर राख में 'बेवर कृषि' करते थे। आज ये पहाड़ी ढलान में स्थाई खेती करते हैं।

भाषा—बैगा जनजाति के लोग बाहर के लोगों से हिन्दी में बातचीत करते हैं, किन्तु इन्होंने कुछ स्थानीय भाषाएँ भी सीखी हैं। वे लोग आपस में एक भाषा में बात करते हैं, जिसे 'बेगानी' कहते हैं। यह छत्तीसगढ़ी तथा गोंडी भाषाओं से अपनी शैली लेती है। मध्य भारत के मण्डला जिले के अधिकांशतः आदिवासियों ने इसे भाषा के तौर पर अपनाया है।

राजनीतिक संगठन—बैगा जनजाति में परम्परागत जाति पंचायत पायी जाती है। बैगा समुदाय की व्यवस्था की धुरी पंचायत पर टिकी होती है। पंचों का निर्णय सर्वमान्य होता है। इनकी पंचायत में पाँच पंच होते हैं—मुकद्दम, दिवान, समरथ कोटवार, देवार।

बैगा जनजाति में पारम्परिक न्याय व्यवस्था के साथ आधुनिक न्याय व्यवस्था सम्मिलित है। इस जनजाति में सामाजिक स्तर पर पंचायत प्रमुख को 'पटेल' कहा जाता है। पटेल के द्वारा ग्राम्य स्तर पर उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान किया जाता है।

लोक परम्परा—बैगा जनजाति के द्वारा लोकगीत और लोकनृत्य गाने और नृत्य की तैयारी व अभ्यास सावन महीने में मनाये जाने वाले हरेली त्यौहार के दिन से आरम्भ करते हैं, जो कि दशरेली नाच तक चलता है। इस जनजाति में प्रचलित लोकगीत और लोकनृत्य प्रमुख हैं—रीना, माय रीना, करमा, झपेटा करमा झुलनीपार, झरपट, ढोल नाचना, दधारिया और गीतकारिन गीत इत्यादि।

4. बिरहोर
(BIRHOR)

बिरहोर मुण्डा भाषा समूह की जनजाति है। बिरहोर का शाब्दिक अर्थ 'वनचर अथवा जंगल का आदमी' है। इन्हें केन्द्र सरकार ने विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया है। इस जनजाति की उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिले हैं। इन्हें कोलारियन समूह की जनजाति माना जाता है। बिरहोर छत्तीसगढ़ राज्य के जशपुर, रायगढ़, कोरबा और बिलासपुर जिले में निवास कर रहे हैं। इनका गाँव मूल गाँव से अलग एक 'पारा' मोहल्ले के रूप में जंगल तथा पहाड़ों के आस-पास बसाहट देखने को मिलता है।

भारत की जनगणना, 2011 के अनुसार बिरहोर जनजाति की कुल जनसंख्या 3104 है। जिसमें पुरुषों की जनसंख्या 1526 है और महिलाओं की जनसंख्या 1578 है। इनमें स्त्री-पुरुष लिंगानुपात 1034 है। इसमें कुल साक्षरता दर 31.70 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 40.00 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता 23.38 प्रतिशत है।

भौतिक संस्कृति—बिरहोर जनजाति की बसाहट सामान्य अस्थाई प्रवृत्ति की होती है। ये जनजाति अपने रहन-सहन के तरीकों के कारण मुख्यतः दो भागों में विभाजित है—बसे तथा घुमक्कड़। घुमक्कड़ बिरहोर सदैव अपना स्थान परिवर्तित करते रहते हैं, जबकि जंगही बिरहोर अपेक्षाकृत ज्यादा स्थाई निवास रखने वाले होते हैं। इन लोगों ने स्थाई रूप से कृषि के लिए जंगल की कुछ भूमि साफ कर ली है, किन्तु इनमें से अधिकतम भूमिहीन हैं। बिरहोर के आवास स्थान को टांडा के नाम से जाना जाता है। एक टांडे में आधा दर्जन अथवा उससे कुछ अधिक झोपड़ियाँ होती हैं। झोपड़ी को कुड़िया भी कहा जाता है। ये झोंपड़ियाँ पत्तों, पेड़ों की टहनियों, घास-फूस और लकड़ी से बनी होती हैं।

इस जनजाति की महिलाएँ पीतल और गिलट की हाथ में पट्टा या ऐंठी, गले में माला, कान में खिनवा तथा नाक में फुल्ली पहनती हैं। महिलाएँ आभूषण के रूप में अपने शरीर पर गोदना गोदवाती हैं।

जीवन संस्कार—बिरहोर जनजाति में प्रसव एक अत्यन्त अस्थाई लगभग सँकरी एक छोटी-सी झोपड़ी 'कुड़िया अथवा कुरमा' में होता है। इनमें पारम्परिक प्रसव महिला विशेषज्ञ 'कुसेर दाई' अथवा 'सूईनमाइन' द्वारा कराया जाता है।

इस जनजाति में ढुकू विवाह, उढ़रिया विवाह और गोलत विवाह का प्रचलन है। ढुकू विवाह को 'पतरा विवाह' भी कहते हैं। विवाह की रस्म पुजारी (ढेड़ा) द्वारा सम्पन्न करायी जाती है।

इस जनजाति में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर व्यक्ति के शव को गाड़ने या दफनाने की परम्परा है, जिसमें उसके साथ प्रयोग किए जा रहे घरेलू सामानों को भी गाड़ दिया जाता है। बिरहोर जनजाति में 'बिस्सर खाने' की प्रथा है।

सामाजिक जीवन—बिरहोर पितृवंशीय और पितृसत्तात्मक जनजाति है। यह अनेक गोत्रों में विभाजित होते हैं, जिनका नामकरण जीव-जन्तुओं, फलों अथवा फूलों के नाम पर होता है। इनमें एक

ही गोत्र में विवाह करना प्रतिबन्धित है। इनमें विभिन्न बहिर्विवाही गोत्र पाया जाता है; जैसे—मोनियल, गातिथा, बन्दर गातिथा, बघेल, बाड़ी, कछुआ, सोनवानी, छतोर एवं मुरिहार।

बिरहोर जनजाति के युवागृह को गोतियाना अथवा गोतिआरा कहा जाता है। बच्चों की आयु 10 वर्ष से अधिक होते ही उन्हें युवागृह या गोतियाना में भेज दिया जाता है।

धार्मिक जीवन—बिरहोर जनजाति के प्रमुख देवता सूर्य हैं। इसके अलावा बूढ़ी माई, मरी माई, पूर्वज पहाड़ एवं वृक्ष इत्यादि की भी पूजा की जाती है। इस जनजाति के लोग पूजा में शराब चढ़ाते हैं और मुर्गा, बकरा एवं सुअर इत्यादि की बलि देते हैं। इनके प्रमुख त्यौहार नवाखानी दशहरा, सरहुल, करमा, सोहराई तथा फगुआ हैं। वे लोग भूत-प्रेत, काला जादू इत्यादि में विश्वास करते हैं। अन्य स्थानीय जनजाति के लोग बिरहोर जनजाति के लोगों को जादू-टोना में माहिर मानते हैं।

आर्थिक जीवन—बिरहोर जनजाति के लोगों का मुख्य कार्य शिकार करना, जंगली कन्दमूल, भाजी एवं जंगली बनोपज एकत्रित करना है। ये लोग मोहलाइन छाल की रस्सी तथा बाँस के टुकड़ों का कटोरा बेचते हैं। इनका मुख्य भोजन चावल, कोदो की पेय, बेलिया, कुल्थी, उड़द की दाल, जंगली कन्दमूल एवं मौसमी साग भाजी है। ये घर के आस-पास की जमीन में साठी, धान, मक्का, कोदो, काला चना इत्यादि भी बोते हैं। इस जनजाति के लोग सलेहा तथा पोटे नामक पेड़ों की लकड़ी, मधुमक्खियों के खोल इत्यादि से ढोलक बनाकर बेचते हैं। शिकार तथा जड़ वाली सब्जियाँ इनकी आदिम अर्थव्यवस्था की पहचान थीं।

इनका मुख्य पेय पदार्थ महुआ और हड़िया शराब है। जिनका इनके जीवन में सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक महत्व है।

राजनीतिक संगठन—बिरहोर जनजाति में जाति पंचायत पायी जाती है। जाति पंचायत के मुखिया को 'मालिक' कहा जाता है। इस पंचायत में ढुकू विवाह, सहपलायन, विवाहिता का पहले पति को छोड़ पुनर्विवाह करने पर 'सूक' वापस करना, अनैतिक सम्बन्ध इत्यादि का परम्परागत तरीके से न्याय किया जाता है।

लोक कलाएँ—बिरहोर जनजाति के लोग करमा, फगुआ, व बिहाव नृत्य इत्यादि नृत्य किया करते हैं। इनके लोकगीतों में करमा गीत, फगुआ गीत, विवाह गीत प्रमुख हैं। इनके द्वारा बजाये जाने वाले प्रमुख वाद्य यन्त्र मांदर, ढोल, ढफली, टिमकी इत्यादि हैं।

परिवर्तन तथा विकास—बिरहोर जनजाति के सम्पूर्ण विकास के लिए शासन द्वारा बिरहोर विकास अभिकरण गठित कर उनके सर्वांगीण विकास के लिए योजनाएँ संचालित हैं। शासन द्वारा उन्हें आवास योजना, वन अधिकार, पट्टा, कृषि उपकरण, पेयजल योजना, आँगनवाड़ी, बिजली कनेक्शन, पहुँच मार्ग, प्राथमिक शाला, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, क्षेत्र में स्वास्थ्य केन्द्र इत्यादि से जोड़ा जा रहा है, जिससे उनका जीवन स्तर ऊँचा उठ सके।

5. कमार
(KAMAR)

कमार जनजाति भारत की अनुसूचित जातियों में से एक है। यह छत्तीसगढ़ की एक आदिम जनजाति है। ये 'गाताडूमा' को अपना पूर्वज मानते हैं। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत अस्थायी कृषि है, जिसे 'दाही' कहा जाता है। इनका सबसे बड़ा देव 'वामनदेव' है। इनके पंचायत के मुखिया को 'कुरहा' कहते हैं। यह छत्तीसगढ़ में सबसे अधिक गोदना गुदवाने वाली जनजाति है। वर्ष 1951 में **डॉ. श्यामाचरण दुबे** ने अपनी पुस्तक 'द कमार' में इनके उत्पत्ति के बारे में वर्णन किया है। घटती जनसंख्या, कम साक्षरता दर, कृषि की आदिम तकनीक और आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर कमार जनजाति को केन्द्र सरकार द्वारा विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया गया है।

कमार जनजाति का मुख्य संकेन्द्रण मुख्य रूप से राज्य के गरियाबन्द, धमतरी, महासमुन्द और कांकेर जिले में है। इस जनजाति की सर्वाधिक जनसंख्या गरियाबन्द, छूरा, मैनपुर और धमतरी जिले के नगरी और मगरलोड विकासखण्ड में मुख्य रूप से निवास कर रही है। इनके कुछ परिवार महासमुन्द

जिले के महासमुन्द और बागबाहरा विकासखण्ड में भी निवासरत हैं। संस्थान के आधारभूत सर्वेक्षण 2015-16 के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य में कमार विशेष पिछड़ी जनजाति की जनसंख्या 26,622 है। जिसमें पुरुषों की जनसंख्या 13,328 है और स्त्री जनसंख्या 13,294 है। यहाँ पुरुष एवं स्त्री लिंगानुपात 1003 है। कमार जनजाति की साक्षरता दर 60.75% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 69.64% है और स्त्री साक्षरता दर 51.96% है।

कमार जनजाति के लोग अपनी उत्पत्ति 'देवडोंगर' से मानते हैं। इस जनजाति के लोग स्वयं को पहाड़ियाँ भी कहते हैं। क्योंकि इनके पूर्वज घने जंगलों के पहाड़ों में अपना जीवन-यापन करते हैं। कमार जनजाति के लोग घने जंगलों, पहाड़ियों और तराइयों में नदी-नालों के किनारे रहते हैं, यह उनकी वन सम्पदा और प्रकृति से निकट सम्बन्ध को दर्शाता है।

ये मादक पेय पदार्थ के रूप में नियमित रूप से महुए की बनी कच्ची शराब मंद का सेवन करते हैं। यह इनके सामाजिक-धार्मिक क्रियाकलापों और दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग है। शराब का सेवन स्त्री एवं पुरुष दोनों करते हैं। कमार सबसे अधिक गोदना गुदवाने वाली जनजाति है। इस जनजाति में गोदना गुदवाने की प्रथा अनिवार्य रूप से पायी जाती है। स्त्रियाँ इसे अपना गहना मानती हैं। ये शरीर पर विभिन्न आकृतियों में घुटनों के नीचे, हाथों में, बांह में, नाक पर, ठुड्डी गोदना गुदवाती हैं। गोदना गोदने का कार्य देवार जाति के द्वारा किया जाता है। गोदने के बदले कमार जाति के द्वारा उन्हें सूषा चावल या नगद पैसे या अन्य वस्तु के रूप में मेहनताना देते हैं।

जीवन संस्कार—कमार जनजाति में प्रसव कार्य मुख्य आवास के बाहर किया जाता है। इनमें नाल काटने का कार्य विपरीत गोत्र अर्थात् नानी पक्ष द्वारा किया जाता है। नवजात शिशु लड़का होने पर तीर से और लड़की होने पर कहरा से नाल काटते हैं। प्रसव के उपरान्त प्रसूता को छिन्द कांदा कुलथी, काके की छाल, लहसुन और अन्य जड़ी-बूटियों को उबालकर तैयार किए गए पदार्थ को अनिवार्यत: पिलाया जाता है, जिसे 'काकेपानी' कहा जाता है।

कमार जनजाति एक बहिर्विवाही समुदाय है। इनमें एक ही गोत्र में विवाह सम्बन्ध निषेध है। इनमें सूकधन अर्थात् वधू मूल्य देने की प्रथा है। विवाह संस्कार परिवार अथवा समाज का बुजुर्ग अनुभवी सम्बन्धी के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। इस जनजाति में सामान्य विवाह के अलावा गुरावट और घर जमाई प्रथा का भी प्रचलन है। इन्हें पैठू (घुसपैठ), उढ़रिया (सहपलायन) को पारम्परिक सामाजिक पंचायत में सामाजिक दण्ड के पश्चात् समाज से स्वीकृति मिल जाती है। विधवा पुनर्विवाह को मान्यता प्राप्त है। विधवा भाभी अपने देवर से तथा विधुर अपनी साली से विवाह कर सकता है।

यह जनजाति आत्मवादी है। इनमें मृतक को दफनाया जाता है तथा तीन दिनों का शोक होता है। तीज नहावन के उपरान्त छुआ हटाने पर घर में हल्दी पानी छिड़का जाता है। पाँचवें अथवा तेरहवें दिन मृत्यु भोज दिया जाता है।

सामाजिक संरचना—कमार जनजाति में सामान्यत: केन्द्रीय परिवार होते हैं। ये पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक एवं पितृस्थानीय होते हैं। परिवार में पारिवारिक निर्णयों और आर्थिक क्षेत्र में कमार महिलाएँ स्वतन्त्र हैं। कमार जनजाति मुख्य रूप से दो उपजाति में विभाजित हैं—पहाड़ पटिया और बुंदरजीवा। मैदान में रहने वाले कमार को बुंदरजीवा कहते हैं। बुंदरजीवा उच्च वर्ग के माने जाते हैं, यह बन्दर के मांस नहीं खाते हैं।

मकाड़िया कमार जंगल में पहाड़ में रहते हैं, जिन्हें पहाड़ पटियाँ अथवा पहारिया भी कहा जाता है। ये मैदानी क्षेत्र में नहीं पाये जाते हैं, जिनके कारण इन्हें 'आमा मौरा' कहते हैं। कमार उपजातियों में अलग-अलग गोत्र होते हैं। इनके प्रमुख गोत्र नेताम, मरकाम, मरई, सोढ़ी, जगत, कुंजाम, छेदईहा, धनुधारी, फूलझरिया, ठाकुरिया, मंडाबी, पहारिया, पड़ोती, नाग, कौडो इत्यादि हैं।

धार्मिक जीवन—कमार जनजाति आत्मावादी प्रकृति का समुदाय होने के साथ-साथ आदिम प्राकृतिक धर्म को मानने वाला समाज है। यह जनजाति अपने जीवन में होने वाले पारलौकिक घटनाओं से स्वयं को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अलग-अलग अवसरों पर देवी-देवताओं की पूजा करती है।



इस जनजाति के लोग जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, भूत-प्रेत में अत्यधिक विश्वास करते हैं। इनके देवी-देवता का पुजारी और भूत-प्रेत भगाने वाले को झाखर, गायता, गुनिया और बैगा कहा जाता है। इस जनजाति के देवी-देवताओं में कचना धुरवा, वामन देव, ठाकुर देव, मागारमारी, शीतला माता तथा पूर्व देव को पूजा जाता है। पूजा में मुर्गियाँ, बकरे की बलि देकर पूजा की जाती है। इनके प्रमुख त्यौहार बीज-बोनी, नवाखाई, माता पहुँचानी, माटी यात्रा इत्यादि इनके त्यौहार हैं। इसके अतिरिक्त कमार जनजाति में हरेली, दशहरा तथा फागुन आदि त्यौहार भी मनाये जाते हैं।

आर्थिक जीवन—कमार विशेष पिछड़ी जनजाति का आर्थिक जीवन मुख्यत: वनों पर निर्भर है। पहले यह समुदाय एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होकर वनों को जलाकर उस पर अनाज के बीज छिड़ककर आदिम कृषि करते थे। जिसे बेवरा खेती अथवा डहिया खेती कहते हैं। इस पद्धति में मुख्य रूप से धान, मड़िया, कोसरा तथा उड़द इत्यादि की फसल ली जाती थी। वर्तमान समय में कमार जनजाति आदिम तकनीक से स्थायी कृषि करती है। यह जनजाति कृषि के अतिरिक्त मुख्यत: अपने पारम्परिक व्यवसाय बाँस-बर्तन निर्माण पर जीविकोपार्जन के लिए निर्भर है। कमार बाँस-बर्तन के रूप में बाँस से बनी झौंहा, टोकरी, सूपा, चाप (चटाई) इत्यादि बनाने का कार्य करते हैं। कमार जनजाति की वन आधारित अर्थव्यवस्था में महुआ, तेंदूपत्ता और साल बीज संकलन और विकल्प का विशेष योगदान है। इनकी अर्थव्यवस्था में शिकार का विशेष स्थान है।

कमार जनजाति का मुख्य भोजन चावल, कोदो की भात या पेज, उबला हुआ चावल, बेलिया, मटर, हरा चना, पीली दाल, काले चने तथा मौसमी सब्जियाँ, जंगली साग इत्यादि हैं।

राजनीतिक संगठन—कमार जनजाति में भी अन्य जातियों की तरह सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए एक परम्परागत जाति पंचायत होती है। इस जनजाति के सभी व्यक्ति उस पंचायत के सदस्य होते हैं। इस पंचायत के प्रमुख को 'मुखिया' कहा जाता है। सामान्य जातिगत विवादों, आपसी मन-मुटाव, लड़ाई-झगड़े का निपटारा गाँव में ही कर लिया जाता है। सामाजिक-सांस्कृतिक आयोजनों पर जाति पंचायतों की बैठकों में निर्णय लेकर मामलों को सुलझाया जाता है। इस पंचायत में वैवाहिक विवाद, अन्य जाति के साथ वैवाहिक अथवा अनैतिक सम्बन्ध इत्यादि विवादों का भी निपटारा किया जाता है। कई गाँवों को मिलाकर एक क्षेत्रीय स्तर की जाति पंचायत होती है। इस जनजाति के राजनैतिक संगठन में मुखिया, पटेल, पंच, कोटवार, अथवा चपरासी पदनाम होते हैं। जाति पंचायत के मुखिया का पद सामान्यत: वंशानुगत होता है, जो प्राय: गाँव का 'पटेल' ही होता है।

राज्य सरकार द्वारा घोषित विशेष पिछड़ी जनजाति
(SCHEDULED TRIBES DECLARED BY THE STATE GOVERNMENT)

छत्तीसगढ़ राज्य सरकार द्वारा राज्य की दो अनुसूचित जनजाति को विशेष पिछड़ी जनजाति समूह का दर्जा प्रदान किया गया है—1. भुंजिया, 2. पण्डो।

1. भुंजिया
(BHUNJIA)

छत्तीसगढ़ शासन द्वारा राज्य की भुंजिया अनुसूचित जनजाति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को भारत सरकार द्वारा घोषित विशेष पिछड़ी जनजातियों के समान मानते हुए राज्य स्तर पर इस समुदाय को विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया गया है। भुंजिया आर्य भाषा समूह की जनजाति है। इनके रसोईघर के लिए अलग कमरा होता है, जिसे लाल रंग से रंगा जाता है, इसलिए इसे 'लाल बंगला' कहा जाता है। लाल बंगला स्वयं में स्वच्छता तथा शुद्धता का प्रतीक है, जो भुंजिया जनजाति को एक विशेष पहचान देता है।

चौखुटिया भुंजिया उप-जनजाति में उनके रसोईघर को लाल बंगला कहा जाता है, जिसे वे रंधनी घर या रंधनी कुरिया कहते हैं।

भुंजिया जनजाति का संकेन्द्रण राज्य में मुख्य रूप से गरिबन्द, धमतरी और महासमुन्द जिले में है। इस जनजाति की सबसे अधिक जनसंख्या गरियाबन्द, मैनपुर, छुरा, देवभोग, मगरलोड, महासमुन्द और बागबहरा विकासखण्ड के छोटे-छोटे ग्रामों में निवास कर रही है।

भारत की जनगणना, 2011 के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य में भुंजिया जनजाति की कुल जनसंख्या 10,603 है। जिसमें पुरुष जनसंख्या 5,225 है और स्त्री जनसंख्या 5,378 है। भुंजिया जनजाति में स्त्री-पुरुष लिंगानुपात 1029 है। इस जनजाति की राज्य में साक्षरता दर 50.93% है, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 64.19% और स्त्री साक्षरता दर 38.04% है।

भुंजिया एक आदिम जनजाति समुदाय है। आग से जलने के कारण इसे भुंजिया नाम दिया गया। इनके वंशज भुंजिया जनजाति के नाम से जाने जाते हैं। भुंजिया जनजाति की उत्पत्ति का ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। 1916 ई. में प्रचलित एक किंवदंती के अनुसार सदियों पहले बचर नामक गोंड ने पैरी नदी में मछली को पकड़ने के लिए जाल डाला। उसमें मछली फँसने के बजाय एक काला पत्थर फँस गया, बचर ने उसे नदी में फेंककर पुनः जाल को नदी में फेंका तो पत्थर पुनः आ गया। बचर उसे अपने घर ले आया। रात्रि में उसे स्वप्न आया उसमें बताया कि वह पत्थर 'बूढ़ादेव' है। बचर ने उनकी पूजा में असमर्थता और विधि की जानकारी न होना बताया, तो बूढ़ादेव ने कहा कि पूजा के जानकार ढूँढ़कर उसे अपनी पुत्री का विवाह कर दो। पूजा के जानकार कोंदा नामक हलबा जाति का एक व्यक्ति मिला, जो गूंगा और बहरा था। बचर की पुत्री का उससे विवाह कर दिया गया। यह बूढ़ादेव का पुजारी बना। इनसे जो सन्तानें उत्पन्न हुईं वे चौखुटिया भुंजिया कहलाई यानी चौखुटिया भुंजिया जनजाति की उत्पत्ति हलबा पुरुष और गोंड महिला के विवाह से मानी जाती है। अंग्रेज विद्वान् रिजले ने चिन्दा भुंजिया की उत्पत्ति बिंझवार तथा गोंड जाति के विवाह से मानी है।

भौतिक संस्कृति—भुंजिया जनजाति इस क्षेत्र की अन्य जनजाति गोंड, कमार और कंवर आदि के साथ गाँव में रहते हैं। इनके गाँव में अन्य जाति के लोग भी रहते हैं। इस जनजाति का निवासित ग्राम भौगोलिक स्थिति के अनुरूप आयताकार, गोलाकार अथवा लम्बवत् होते हैं। इनके घर प्रायः मिट्टी के बने होते हैं, जिस पर घास-फूस अथवा देशी खपरैल का छप्पर होता है। इस जनजाति में घरेलू उपयोग की वस्तुएँ कृषि और अन्य अर्थोपार्जन के उपकरण, शिकार उपकरण, वस्त्र विन्यास, शृंगार प्रसाधन आदि भौतिक संस्कृति के रूप में परिलक्षित होते हैं।

जीवन संस्कार—भुंजिया जनजाति में गर्भावस्था में कोई विशेष संस्कार नहीं किये जाते हैं। प्रसव प्रायः घर पर ही स्थानीय दाई या परिवार की बुजुर्ग महिला की देख-रेख में किया जाता है। प्रसव के बाद प्रसूता को जड़ी-बूटियों से बना कसा-पानी दिया जाता है। छठवें दिन छठी संस्कार और शुद्धिकरण का कार्य किया जाता है, जिसमें उन पर दूध छिड़क कर उन्हें पवित्र किया जाता है और सम्बन्धियों को भोज कराया जाता है। इस जनजाति में बालिकाओं के पहली बार रजस्वला होने के पहले कांड विवाह की अनिवार्य प्रथा का प्रचलन है, जिसमें बालिका का विवाह तीर या बाण के साथ कराया जाता है। इनमें विवाह के लिए विवाह प्रस्ताव वर पक्ष की तरफ से होता है। वर पक्ष के द्वारा वधू पक्ष को सूक के रूप में दाल, चावल, गुड़ इत्यादि दिया जाता है। विवाह सम्बन्धी रस्म को जाति के सरमत गोत्र के बुजुर्ग व्यक्ति द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। इनमें ओदरिया, पैठू, लमसेना, चूड़ी विवाह इत्यादि को समाज द्वारा मान्यता प्राप्त है। इस जनजाति में ममेरे-फुफेरे पुत्र-पुत्रियों के साथ विवाह को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। इनमें 'कांडाबारा' विवाह की परम्परा है।

इस जनजाति में किसी भी व्यक्ति की मृत्यु होने पर मृतक को दफनाए जाने की प्रथा है। तीसरे दिन घर की लिपाई-पुताई कर घर का शुद्धिकरण किया जाता है, जिसे तीज नहावन कहा जाता है। समगोत्रीय पुरुष दाढ़ी, मूँछ और सिर के बाल का मुण्डन कराते हैं और दसवें दिन मृत्यु भोज दिया जाता है। यह आत्मावादी समुदाय है।

सामाजिक संरचना—भुंजिया जनजाति पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक एवं पितृनिवास स्थानीय होता है। यह जनजाति स्वयं को कछुआ वंश या नेताम वंश के और मेचका वंश या मरकाम वंश के मानते हैं।

इनमें नेताम, मरई, पाती, सेठ दीवान, नाईक, सरमत, सुआर इत्यादि गोत्र पाये जाते हैं। इनके गोत्र हैं। बहिर्विवाही होते हैं। इस जनजाति के लोग आपस में भुंजिया बोली बोलते हैं। भुंजिया द्रविड़ो आर्यन भाषा परिवार के सदस्य हैं।

धार्मिक जीवन—भुंजिया जनजाति प्रकृति पूजक है। इनके देवी देवता, ईष्ट देव प्रकृति से सम्बन्धित; जैसे—पहाड़, नदी, वृक्ष, पशु-पक्षी इत्यादि के स्वरूप होते हैं। इनके द्वारा ईष्ट देव, ग्राम देव, ठाकुर देव, काल्हा देव, शीतला माता, बूढ़ी माता, रिच्छिन पाठ, धारणी दाई, माटी दाई के अलावा कुल गोत्र देव और पूर्वज देव की पूजा की जाती है। इनका धार्मिक पुजारी व जादू-मन्त्र का जानकार 'बैगा' कहलाता है। ये जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, भूत-प्रेत में काफी विश्वास करते हैं।

आर्थिक जीवन—भुंजिया जनजाति का आर्थिक जीवन मुख्य रूप से कृषि, जंगली वनोपज संग्रह, पशु पालन, मजदूरी इत्यादि पर आधारित है। इनमें वनोपज संकलन प्राय: चैत्र माह से आषाढ़ माह तक होता है। इस अवधि में चार, महुआ, तेन्दुपत्ता सरई बीज इत्यादि का संकलन किया जाता है। भुंजिया जनजाति के अर्थोपार्जन का मुख्य संसाधन 'कृषि' है। अधिकतम परिवार परम्परागत तकनीक के द्वारा कृषि कार्य करते हैं।

राजनीतिक संगठन—इस जनजाति में परम्परागत न्याय व्यवस्था के साथ आधुनिक न्याय व्यवस्था भी सम्मिलित है। लेकिन स्वजातीय लोगों के विवाद अथवा अप्रिय घटना होने पर सामाजिक न्याय व्यवस्था यानी जाति पंचायत को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। इनमें सामाजिक स्तर पर राजपाती, पुजेरी (राजा), सरमत (मन्त्री) और दीवान द्वारा समस्याओं का निपटारा किया जाता है। ग्राम पंचायत स्तर की समस्याओं का समाधान ग्राम पटेल के द्वारा किया जाता है। ग्राम पटेल का पद वंशानुगत होता है।

लोक कलाएँ—इस जनजाति के प्रमुख त्यौहार हरेली, पोला, तीजा, पितर, नवाखानी, दशहरा, दीवाली तथा होली हैं। त्यौहारों पर देवी-देवताओं की पूजा की जाती है।

2. पण्डो
(PANDO)

छत्तीसगढ़ शासन द्वारा राज्य की पण्डो अनुसूचित जनजाति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को भारत सरकार द्वारा घोषित विशेष पिछड़ी जनजातियों के समतुल्य मानते हुए राज्य स्तर पर इस समुदाय को विशेष पिछड़ी जनजाति घोषित किया गया है। पण्डो जनजाति आर्य भाषा समूह की जनजाति है। ये अपने आपको पांडव के वंशज मानते हैं। इस जनजाति की मुख्य जनसंख्या सरगुजा, सूरजपुर, कोरिया, मनेन्द्रगढ़ तथा सामरीपाल इत्यादि स्थानों में निवास कर रही है।

पण्डो जनजाति की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कोई अभिलेख नहीं है। प्रचलित दंतकथा के अनुसार ये स्वयं की उत्पत्ति महाभारत कालीन पाण्डव से मानते हैं। इनके अनुसार पाँच भाई पाण्डव जुए में अपना राजपाट हारकर 12 वर्ष का वनवास काल वन में बिताए थे। वे जंगल के कन्दमूल, फलफूल खाकर अपना गुजारा करते थे। इस जनजाति के लोग उन्हें कन्दमूल एकत्र करके भोजन के लिए देते थे। माता द्रौपदी ने उन्हें बाँस से अलग-अलग तरह की टोकरी, सूपा इत्यादि बनाने की कला और गाण्डीवधारी अर्जुन ने इन्हें तीर धनुष बनाना तथा चलाना सिखाया था। इनके लोकगीत व लोककथाओं में पाण्डव राजा का वर्णन आता है।

पण्डो विकास एजेन्सी के अनुसार, राज्य में उनकी कुल जनसंख्या 31,814 है, जिसमें पुरुष जनसंख्या 16,522 है और स्त्री जनसंख्या 15,292 है। शैक्षणिक दृष्टिकोण से पण्डो जनजाति की सम्पूर्ण साक्षरता दर 22.20% है।

यह जनजाति सरगुजा (अम्बिकापुर), सूरजपुर तथा बलरामपुर क्षेत्र में निवास करती है।

भौतिक संस्कृति—पण्डो जनजाति के लोगों के घर की दीवारें मिट्टी की बनी होती हैं तथा घास-फूस अथवा देशी खपरैल का छप्पर बना होता है। इनका मुख्य भोजन चावल, कोदो, कुटकी आदि का भात या पेज, उड़द, मूंग, कुलथी, बेलिया की दाल, मौसमी सब्जी या जंगली भाजी है। ये लोग वर्षा

खाद्य में कदम्ब फल और महुआ को लेती तथा कोड़ा आदि खाते हैं। मांसाहार में मुर्गी, बकरा, खरगोश, सुअर, जंगली पक्षी, केकड़ा इत्यादि खाते हैं। इस जनजाति के लोग उत्सव, त्यौहार आदि में सुअर से बने व्यंजन लेते हैं तथा चावल से बनी हड़िया का भी सेवन करते हैं।

जीवन संस्कार—इस जनजाति में प्रसव अनुभवी अथवा बुजुर्ग महिलाओं द्वारा कराया जाता है। इसे 'छूने' कहा जाता है। प्रसव के छः दिन बाद छठी का त्यौहार मनाया जाता है। इसी दिन शिशु का नामकरण किया जाता है और पाँच माह के बाद शिशु का अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है।

पण्डो जनजाति में दुरूह, पुरी पहनई और उढ़रिया विवाह का प्रचलन है।

इस जनजाति में विवाह में वर पक्ष के लोग वधू के पिता को वधू मूल्य के रूप में दाल, चावल, तेल, गुड़ और नगद रुपये के रूप में देते हैं, जिसे 'सुखदाम' कहते हैं।

इस जनजाति में विवाह के लिए धन की कमी में 'बरोखी बिहाव' भी करते हैं, जिसमें तेल, हल्दी की रस्म नहीं होती है, वधू मूल्य को कपड़े देकर अंगूठी पहनाकर घर ले आता है।

इस जनजाति में किसी सदस्य की मृत्यु होने पर दाह संस्कार किया जाता है। इनमें पुरुषों के लिए मृत्यु संस्कार अधिक होता है। पुरुषों के लिए 10 दिन तथा महिलाओं के लिए 9 दिन बाद मृत्यु भोज का आयोजन किया जाता है।

सामाजिक संरचना—पण्डो समाज में परिवार का विशेष स्थान है। यह परिवार पितृसत्तात्मक और पितृस्थानीय होता है। इस जनजाति में दो उप-समूह होते हैं—उत्तरांश और सरगुजिया। इस जनजाति के मुख्य गोत्र धलवा, मनिगा, भूसर, चमड़िया, दारी, चरगोड़िया, मरकाम, गोसाई, कमरो, मछराहा, चिरिया, सिरम, चटगोहिया, भुसर, शिकारी, बिलमिया, भंवर, टकरिया, टोटरवा इत्यादि हैं।

धार्मिक जीवन—पण्डो जनजाति के प्रमुख देवी-देवताओं में महामाई, कुदरगढ़ी माई, दिहारी माई, बागेश्वर देव, बरहिया देव, बाबा देव, कुल देवी/देव, अन्न कुमारी, छुरी पार, राकश पाट इत्यादि हैं। ये जादू-टोना और भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं।

आर्थिक जीवन—इस जनजाति का आर्थिक जीवन मुख्य रूप से वनोपज संग्रह, बाँस बर्तन निर्माण, मजदूरी, कृषि इत्यादि पर आधारित है। बाँस के बर्तन यानी डलिया, टोकरी, सूपा इत्यादि बनाते हैं। स्थानीय अन्य आदिवासी अथवा गैर-आदिवासी कृषकों की खेती में मजदूरी करते हैं।

राजनीतिक संगठन—पण्डो जनजाति में परम्परागत सामाजिक पंचायत पायी जाती है। ग्राम्य स्तर पर जाति पंचायत के मुखिया को मुखिया कहते हैं। मुखिया का पद वंशानुगत होता है। इस पंचायत में वैवाहिक विवाद का निपटारा किया जाता है। इनमें जाति के देवी-देवताओं की पूजा-व्यवस्था भी की जाती है।

लोक कलाएँ—पण्डो जनजाति के प्रमुख त्यौहार करमा तिहार, लाटा महुआ तिहार, होली, दशहरा, दीवाली इत्यादि हैं। करमा पूजा के समय लड़के और लड़कियाँ दोनों करमा नृत्य करती हैं। होली के समय होली नृत्य, विवाह में बिहाव नृत्य करते हैं। इनमें प्रमुख लोकगीतों में करमा गीत, बिहाव गीत, फागु आदि हैं।

अभ्यास प्रश्न
(EXERCISE QUESTIONS)

❑ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. छत्तीसगढ़ की विशेष रूप से पिछड़ी जनजातियाँ कौन-कौन-सी हैं? अबूझमाड़िया जनजाति के बारे में विस्तारपूर्वक समझायें। (Which are the particularly vulnerable Tribes of Chhattisgarh? Explain in detail about the Abujhmariya Tribe.)
2. पहाड़ी कोरवा जनजाति की विस्तृत व्याख्या कीजिए। (Explain in detail the Pahari Korwa Tribe.)
3. बैगा एवं बिरहोर जनजाति का परिचय देते हुए उनके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन की विवेचना कीजिए। (Introducing the Baiga and Birhor Tribes, discuss their Social, religious, economic and political organization.)

10 जनजातीय गतिशीलता— जनजातीय समाज में हो रहे परिवर्तन [TRIBAL MOBILITY : CHANGES TAKING PLACE IN TRIBAL SOCIETIES]

अवधारणा
(CONCEPT)

छत्तीसगढ़ भारत के सबसे महत्वपूर्ण जनजातीय क्षेत्रों में से एक है जहाँ लगभग 30% जनसंख्या अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित है। यहाँ के जनजातीय समुदाय पारम्परिक रूप से सुदूर वनाच्छादित क्षेत्रों में निवास करते आए हैं और अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संरचना तथा वन उत्पादों पर आधारित आर्थिक व्यवस्था के लिए जाने जाते हैं। स्वतन्त्रता के बाद से, विशेषकर पिछले कुछ दशकों में, इन समाजों में गहन और बहुआयामी परिवर्तनों की एक जटिल प्रक्रिया देखी जा रही है जिसे "जनजातीय गतिशीलता" कहा जाता है। यह गतिशीलता आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय स्तरों पर हो रहे परिवर्तनों के पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाती है। आधुनिकीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव ने जनजातीय समाजों की पारम्परिक जीवनशैली को अभूतपूर्व चुनौतियों और अवसरों के सामने खड़ा कर दिया है। वन अधिकार कानून, शिक्षा के प्रसार, रोजगार के नए अवसरों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे कारकों ने इन समुदायों के सामाजिक ढाँचे को पुनर्परिभाषित किया है। साथ ही, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और पर्यावरणीय असन्तुलन ने उनकी आजीविका को प्रभावित किया है। सांस्कृतिक स्तर पर पारम्परिक मूल्यों और आधुनिक प्रभावों के बीच तनाव देखा जा रहा है जहाँ युवा पीढ़ी नए विचारों को अपनाने के साथ-साथ अपनी जड़ों से जुड़े रहने का प्रयास कर रही है। राजनीतिक सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय की माँगें भी जनजातीय समाजों की गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गई हैं। इस अध्याय में छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों में हो रहे इन परिवर्तनों के विभिन्न आयामों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा ताकि उनकी वर्तमान स्थिति और भविष्य की दिशा को समझा जा सके। यह अध्ययन न केवल जनजातीय समाजों की बदलती हुई गतिशीलता को समझने में मदद करेगा बल्कि उनकी चुनौतियों और सम्भावनाओं को समग्र रूप से देखने का अवसर भी प्रदान करेगा।

आर्थिक परिवर्तन—आजीविका के स्त्रोतों का विविधीकरण और संकट
(ECONOMIC CHANGE : DIVERSIFICATION OF LIVELIHOOD SOURCES AND CRISIS)

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज की आर्थिक व्यवस्था में गहरा परिवर्तन देखने को मिल रहा है, जहाँ पारम्परिक आजीविका के स्त्रोत अब धीरे-धीरे बदलते जा रहे हैं। सदियों से यह समाज वन संसाधनों जैसे कंद-मूल, फल, लकड़ी और तेंदूपत्ता संग्रहण के साथ-साथ झूम खेती और छोटे पैमाने की कृषि पर निर्भर था, लेकिन अब यह पारम्परिक व्यवस्था संकट के दौर से गुजर रही है। वनों के लगातार सिमटने और वन अधिकारों पर पाबंदियों ने इन समुदायों की आजीविका को गहराई से प्रभावित किया है, हालाँकि वन अधिकार अधिनियम 2006 एक सकारात्मक कदम था, पर इसका क्रियान्वयन अभी भी चुनौतियों से घिरा हुआ है। राज्य में खनन और औद्योगिक परियोजनाओं के तेजी से विस्तार तथा बाजार अर्थव्यवस्था के प्रवेश ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया है।

इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप आजीविका के स्रोतों में विविधीकरण हुआ है, जहाँ अब बड़ी संख्या में जनजातीय युवा खनन, निर्माण, ईंट भट्टों और अन्य असंगठित क्षेत्रों में मजदूरी करने को मजबूर हैं। कुछ लोगों ने छोटे व्यवसाय या परिवहन जैसे क्षेत्रों में भी प्रवेश किया है, लेकिन यह विविधीकरण अक्सर अस्थिर, शोषणकारी और निम्न वेतन वाला है, जिससे आर्थिक असुरक्षा की स्थिति बनी हुई है। पारम्परिक ज्ञान और संसाधनों पर आधारित आजीविका के क्षरण से न केवल सांस्कृतिक विघटन को बल मिला है, बल्कि पर्यावरण पर भी अतिरिक्त दबाव पड़ा है। कृषि के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं, जहाँ रासायनिक खादों और बाजार-उन्मुख फसलों के प्रवेश ने लागत को बढ़ा दिया है, साथ ही पारम्परिक बीजों के संकट ने जैव विविधता को खतरे में डाल दिया है।

इन आर्थिक परिवर्तनों ने जनजातीय समाज की सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया है, जहाँ ग्रामीण-शहरी प्रवासन में तेजी आई है और महिलाओं व बुजुर्गों पर आर्थिक दबाव बढ़ा है। सरकारी योजनाओं का लाभ अक्सर सीमित समूहों तक ही पहुँच पाता है, जबकि आजीविका के नए स्रोतों में स्थायित्व की कमी स्पष्ट दिखाई देती है। इस संक्रमण काल में पारम्परिक और आधुनिक आर्थिक तन्त्र के बीच संघर्ष साफ देखा जा सकता है, जिसमें सन्तुलित विकास की सख्त आवश्यकता है। जनजातीय समुदायों को इस बदलाव में सशक्त बनाने के लिए न केवल उनके पारम्परिक अधिकारों की रक्षा करनी होगी, बल्कि स्थायी आजीविका के नए अवसर भी सुनिश्चित करने होंगे।

राजनीतिक जागरूकता और सशक्तिकरण की चुनौतियाँ
(CHALLENGES OF POLITICAL AWARENESS AND EMPOWERMENT)

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों में राजनीतिक चेतना का उदय एक ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रतीक है, जो दशकों के सामाजिक-राजनीतिक हाशियाकरण के बाद एक नई दिशा की ओर इशारा करता है। शिक्षा के प्रसार और मीडिया की बढ़ती पहुँच ने इन समुदायों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया है, जबकि गैर-सरकारी संगठनों के निरन्तर प्रयासों ने इस प्रक्रिया को गति प्रदान की है। पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण के प्रावधान ने स्थानीय स्तर पर जनजातीय नेतृत्व को मजबूती दी है, जिससे अब आदिवासी नेता न केवल ग्राम पंचायतों बल्कि राज्य विधानसभा और संसद तक में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। यह परिवर्तन सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण की दिशा में एक सकारात्मक कदम तो है, लेकिन इसके सामने अनेक गम्भीर चुनौतियाँ भी खड़ी हैं।

राजनीतिक सशक्तिकरण की इस यात्रा में सबसे बड़ी बाधा गैर-जनजातीय राजनीतिक दलों और सत्ता संरचनाओं का वर्चस्व है, जो अक्सर जनजातीय नेताओं को वास्तविक स्वायत्तता प्राप्त करने से रोकता है। आन्तरिक सामाजिक विभाजन, जहाँ कुछ प्रभावशाली जनजातियाँ अन्य समुदायों पर हावी होने का प्रयास करती हैं, ने इस प्रक्रिया को और भी जटिल बना दिया है। भ्रष्टाचार और प्रशासनिक अक्षमता जैसी समस्याएँ वास्तविक सशक्तिकरण में बाधक साबित हो रही हैं, जिससे जमीनी स्तर पर बदलाव की गति धीमी हुई है। फिर भी, जनजातीय अस्मिता पर आधारित राजनीतिक आन्दोलनों का उभार और अधिकारों की माँग करती आवाजों का मजबूत होना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि यह समुदाय अब अपनी राजनीतिक भागीदारी को लेकर गम्भीर है। इन चुनौतियों के बावजूद, जनजातीय समाज में बढ़ती राजनीतिक गतिशीलता एक आशाजनक भविष्य की ओर संकेत करती है, जहाँ वास्तविक सशक्तिकरण और समान भागीदारी की सम्भावनाएँ धीरे-धीरे साकार हो रही हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन—परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व
(SOCIO-CULTURAL CHANGE : CONFLICT BETWEEN TRADITION AND MODERNITY)

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की लहरें एक गहन द्वन्द्व को जन्म दे रही हैं, जहाँ पारम्परिक मूल्य और आधुनिक प्रभाव आमने-सामने खड़े हैं। सदियों से चली आ रही सामूहिकता की भावना, प्रकृति के साथ आध्यात्मिक रिश्ता और सादगी भरा जीवन अब नई पीढ़ी के सामने प्रश्नचिह्न बनकर खड़ा है। शिक्षा के प्रसार और मीडिया के व्यापक प्रभाव ने इन समुदायों को बाहरी दुनिया से जोड़ा है, जिससे नए विचारों और जीवनशैलियों ने धीरे-धीरे अपनी जगह बना ली है।

इस बदलाव ने पारिवारिक ढाँचे को सबसे अधिक प्रभावित किया है, जहाँ संयुक्त परिवार अब टूट रहे हैं और व्यक्तिवाद की भावना मजबूत होती जा रही है। विवाह की पारम्परिक प्रथाएँ भी बदलाव के दौर से गुजर रही हैं, जबकि सामाजिक नियन्त्रण के पुराने तरीके जैसे जातीय पंचायतों का प्रभाव कम होता जा रहा है।

सांस्कृतिक धरोहर के विभिन्न पहलू भी इस परिवर्तन से अछूते नहीं रहे हैं। पारम्परिक भाषाएँ धीरे-धीरे कम प्रचलन में आ रही हैं, जबकि लोक कलाओं जैसे नृत्य, संगीत और चित्रकला के रूप भी बदल रहे हैं। परिधानों में आधुनिकता की झलक साफ दिखाई देने लगी है और पारम्परिक उत्सवों तथा धार्मिक आस्थाओं में भी नए तत्व शामिल हो गए हैं। यह परिवर्तन एक जटिल द्वन्द्व पैदा करता है। एक ओर जहाँ यह समाज को मुख्यधारा से जोड़कर कुछ पुरानी रूढ़ियों को तोड़ रहा है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक विरासत के क्षरण और सामाजिक अस्मिता के संकट को भी जन्म दे रहा है। युवा पीढ़ी विशेष रूप से इस संक्रमण काल में फँसी हुई है, जहाँ उन्हें एक ओर पारम्परिक मूल्यों और दूसरी ओर आधुनिक आकर्षण के बीच सन्तुलन बनाना पड़ रहा है। इस प्रक्रिया में कई बार पीढ़ीगत टकराव भी देखने को मिलते हैं, जहाँ बुजुर्ग पीढ़ी परिवर्तन की इस रफ्तार से चिन्तित दिखाई देती है। फिर भी, यह बदलाव एक सामान्य सामाजिक प्रक्रिया है जो समय के साथ नए सामाजिक-सांस्कृतिक समीकरणों को जन्म देगी, जिसमें पारम्परिक मूल्य और आधुनिक विचार किसी-न-किसी रूप में सहअस्तित्व में रहेंगे।

शिक्षा का प्रसार और उसके प्रभाव
(SPREAD OF EDUCATION AND ITS EFFECTS)

छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा के प्रसार ने एक नए युग का सूत्रपात किया है, जहाँ साक्षरता दर में उल्लेखनीय वृद्धि के साथ-साथ उच्च शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ा है। राज्य गठन के बाद से स्कूलों, आश्रम शालाओं और छात्रावासों के विस्तार ने जनजातीय युवाओं को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल नए ज्ञान और कौशल का प्रसार हुआ है बल्कि सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता में भी सुधार की सम्भावनाएँ बढ़ी हैं। शिक्षा के माध्यम से जनजातीय समुदायों में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ है और वे अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हुए हैं। यह परिवर्तन एक क्रान्तिकारी मोड़ की ओर इशारा करता है, जहाँ शिक्षा सशक्तिकरण के सबसे प्रभावी साधन के रूप में उभरी है।

हालाँकि, इस उज्ज्वल तस्वीर के कई धुँधले पहलू भी हैं जो शिक्षा प्रणाली की मौजूदा चुनौतियों को उजागर करते हैं। अधिकांश स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं और शिक्षकों की भारी कमी है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना एक बड़ी चुनौती बन गया है। पाठ्यक्रम की सामग्री जनजातीय सन्दर्भों और स्थानीय भाषाओं से कटी हुई प्रतीत होती है, जिससे छात्रों को स्वयं को शिक्षा प्रणाली से अलग-थलग महसूस होता है और ड्रॉपआउट दर में वृद्धि होती है। मातृभाषा में शिक्षा के अभाव ने इस समस्या को और भी गहरा कर दिया है, जहाँ बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा ही अपनी भाषा के माध्यम से प्राप्त नहीं हो पाती। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी युवाओं को रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाते, जिससे निराशा और पलायन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसके अतिरिक्त, औपचारिक शिक्षा प्रणाली के प्रभाव में पारम्परिक ज्ञान और स्थानीय कौशल की उपेक्षा हो रही है, जो इन समुदायों की सांस्कृतिक विरासत के लिए एक गम्भीर खतरा उत्पन्न करता है। इन सभी चुनौतियों के बावजूद, शिक्षा का प्रसार जनजातीय समाज में एक सकारात्मक बदलाव का वाहक बना हुआ है, जिसमें सुधार की असीम सम्भावनाएँ निहित हैं।

भूमि अधिकार, विस्थापन और पर्यावरणीय संघर्ष
(LAND RIGHTS, DISPLACEMENT AND ENVIRONMENTAL CONFLICTS)

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों के लिए भूमि और वन सिर्फ संसाधन नहीं बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान और आध्यात्मिक अस्तित्व का मूल आधार हैं। स्वतन्त्रता के बाद से विकास के नाम

पर चलाए गए बड़े बाँधों, खनन परियोजनाओं और वन्यजीव अभयारण्यों के निर्माण ने इन समुदायों को उनकी जमीन से बेदखल कर दिया है। खनिज सम्पदा से भरपूर छत्तीसगढ़ में यह समस्या विशेष रूप से गम्भीर है, जहाँ विकास की अंधी दौड़ ने जनजातीय जीवन को गहरे तक प्रभावित किया है। विस्थापन की त्रासदी सिर्फ घर छोड़ने तक सीमित नहीं रहती—यह उनकी आजीविका के स्रोतों, सामाजिक सम्बन्धों, सांस्कृतिक परम्पराओं और आत्मसम्मान को भी नष्ट कर देती है। अक्सर भ्रष्टाचार से ग्रस्त और अपर्याप्त पुनर्वास योजनाएँ इन विस्थापितों की पीड़ा को और बढ़ा देती हैं।

वन अधिकार अधिनियम 2006 जैसे कानूनी प्रावधानों ने इस ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने की दिशा में एक आशा जगाई थी, जिसका उद्देश्य जनजातीय समुदायों को उनकी पारम्परिक वन भूमि पर अधिकार दिलाना था। लेकिन जटिल प्रशासनिक प्रक्रियाओं और सरकारी उदासीनता ने इस कानून के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा डाली है। इस स्थिति ने गम्भीर पर्यावरणीय संघर्षों को जन्म दिया है, जहाँ जनजातीय समुदाय अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं। यह संघर्ष सिर्फ जमीन के लिए नहीं बल्कि उनके सांस्कृतिक अधिकारों, पारम्परिक ज्ञान और पारिस्थितिकी तन्त्र को बचाने की लड़ाई है। विकास और संरक्षण के नाम पर किए जा रहे इन उपायों ने जनजातीय समाज को एक ऐसे दुविधापूर्ण मोड़ पर ला खड़ा किया है, जहाँ उनकी पारम्परिक जीवनशैली और आधुनिक विकास के बीच गहरा अन्तर्विरोध पैदा हो गया है। यह संघर्ष उनकी सामाजिक गतिशीलता का सबसे दर्दनाक पहलू है, जो राज्य की विकास नीतियों और जनजातीय अधिकारों के बीच बढ़ते तनाव को दर्शाता है।

धर्मांतरण और धार्मिक पहचान का परिवर्तन
(CONVERSION AND CHANGE OF RELIGIOUS IDENTITY)

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों की पारम्परिक आस्था प्रणालियाँ सदियों से प्रकृति, पूर्वजों और अदृश्य आत्माओं में गहरी आस्था पर टिकी रही हैं, जिसे 'धार्मिकता' या 'आदिवासी धर्म' के रूप में जाना जाता है। इनकी विशिष्टता स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा, पवित्र वनक्षेत्रों के संरक्षण और अनूठे अनुष्ठानों में निहित है। परन्तु पिछले कई दशकों से इन समुदायों में ईसाई और हिन्दू धर्म की ओर धर्मांतरण की एक स्पष्ट प्रवृत्ति देखी जा रही है, जो कई सामाजिक-आर्थिक कारकों से प्रेरित है। मिशनरी संस्थाओं द्वारा शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का प्रावधान एक प्रमुख कारण रहा है, जबकि हिन्दू संगठनों के 'घर वापसी' अभियानों ने भी इस प्रक्रिया को प्रभावित किया है। सामाजिक भेदभाव से मुक्ति पाने की इच्छा और आधुनिकता के प्रभाव ने भी पारम्परिक आस्थाओं को कमजोर करने में भूमिका निभाई है।

इस धर्मांतरण ने जनजातीय समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को गहरे तक प्रभावित किया है। एक ओर जहाँ इसने समुदायों में नई धार्मिक पहचान और सामाजिक सम्पर्कों के द्वार खोले हैं, वहीं दूसरी ओर इसने सामुदायिक एकता में दरारें भी पैदा की हैं। पारम्परिक सांस्कृतिक प्रथाएँ, लोक ज्ञान और आध्यात्मिक मान्यताएँ धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही हैं, जिससे इन समुदायों की विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत खतरे में पड़ गई है। धर्म परिवर्तन के बाद अक्सर पुराने अनुष्ठानों और उत्सवों को त्याग दिया जाता है, जिससे पीढ़ियों से चले आ रहे सांस्कृतिक सूत्र टूटने लगे हैं। यह परिवर्तन सामाजिक तनावों और राजनीतिक विवादों को भी जन्म देता है, क्योंकि विभिन्न धार्मिक समूह इन समुदायों को अपने-अपने धर्म में शामिल करने के लिए प्रयासरत रहते हैं। इस संक्रमण काल में जनजातीय युवा पीढ़ी विशेष रूप से द्वन्द्व का सामना कर रही है, जो एक ओर पारम्परिक मूल्यों और दूसरी ओर नव अपनाए गए धर्म के बीच सन्तुलन बनाने का प्रयास कर रही है। यह धार्मिक पहचान का संकट न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि सम्पूर्ण समुदाय की सामूहिक चेतना को प्रभावित कर रहा है।

संचार माध्यमों और प्रौद्योगिकी का प्रभाव
(INFLUENCE OF MEDIA AND TECHNOLOGY)

छत्तीसगढ़ के दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों में मोबाइल फोन, इन्टरनेट और सोशल मीडिया का तेजी से प्रवेश एक सामाजिक-सांस्कृतिक क्रान्ति लेकर आया है, जिसके दोहरे प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक

और जहाँ इस डिजिटल क्रान्ति ने सूचना तक पहुँच को लोकतान्त्रिक बनाया है, वहीं दूसरी ओर इसने पारम्परिक जीवनशैली को गहरे तक प्रभावित किया है। शैक्षिक संसाधनों, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारियों, सरकारी योजनओं के विवरण और रोजगार के अवसर अब इन दूरस्थ समुदायों की पहुँच में हैं, जिससे उनके सशक्तिकरण की नई सम्भावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। प्रवासी परिवारों के सदस्य अब अपने गाँवों से आसानी से जुड़े रह सकते हैं, जबकि सामुदायिक जागरूकता और सामूहिक आयोजनों को भी इससे नया आयाम मिला है।

हालाँकि, इस तकनीकी प्रगति के कुछ गम्भीर दुष्परिणाम भी सामने आए हैं। युवा पीढ़ी में मोबाइल और इन्टरनेट की बढ़ती लत ने पारम्परिक सामाजिक संवाद और सांस्कृतिक गतिविधियों को पीछे धकेल दिया है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर फैलने वाली भ्रामक सूचनाएँ समुदायों में तनाव और विभाजन पैदा कर रही हैं, जबकि बाहरी संस्कृति का अंधाधुंध प्रभाव स्थानीय मूल्यों और पहचान के लिए खतरा बन गया है। विशेष चिन्ता का विषय यह है कि डिजिटल सुविधाओं तक असमान पहुँच ने समाज के भीतर एक नया विभाजन पैदा कर दिया है, जहाँ कुछ लोग तो तकनीकी लाभ उठा रहे हैं, जबकि अभी भी बड़ी आबादी इससे वंचित है। इस डिजिटल युग में जनजातीय समुदायों को एक जटिल सन्तुलन बनाने की आवश्यकता है—जहाँ वे तकनीकी प्रगति के लाभों को तो अपनाएँ, लेकिन साथ-ही-साथ अपनी सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक एकता की रक्षा भी कर सकें। यह संक्रमण काल उनके लिए नई सम्भावनाओं और चुनौतियों को एक साथ लेकर आया है।

अत: छत्तीसगढ़ में जनजातीय गतिशीलता एक सतत, जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है। यह परिवर्तन रेखीय नहीं है, बल्कि विरोधाभासों और तनावों से भरा हुआ है। एक ओर आधुनिकता, विकास और मुख्यधारा से जुड़ाव के अवसर हैं, तो दूसरी ओर सांस्कृतिक विघटन, आर्थिक शोषण, विस्थापन और अस्मिता के संकट के गम्भीर खतरे हैं। जनजातीय समाज निष्क्रिय दर्शक नहीं हैं; वे इन परिवर्तनों के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया दे रहे हैं, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, अपनी पहचान को पुनर्परिभाषित कर रहे हैं और नई परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठाने की कोशिश कर रहे हैं। राज्य की नीतियों की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वे जनजातीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए, उनके अधिकारों (विशेषकर भूमि और वन अधिकारों) की रक्षा करती हैं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा प्रदान करती हैं, स्थायी आजीविका के अवसर सृजित करती हैं और उनकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित व प्रोत्साहित करती हैं। छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज का भविष्य इसी सन्तुलन में निहित है।

अभ्यास प्रश्न
(EXERCISE QUESTIONS)

❑ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज में आर्थिक परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए। इन परिवर्तनों के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए। (Explain the economic transformations in the tribal society of Chhattisgarh. Present a detailed analysis of the positive and negative impacts of these changes.)
2. छत्तीसगढ़ में जनजातीय समुदायों के राजनीतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया का मूल्यांकन कीजिए। इस प्रक्रिया में आने वाली प्रमुख चुनौतियाँ क्या हैं? पंचायती राज संस्थाओं (PRI) और आरक्षण की भूमिका पर विचार व्यक्त करें। [Evaluate the process of political empowerment of tribal ... What are the major challenges in this process ? ... (PRI) and reservation.]

11 जनजातीय विकास की योजनाएँ [SCHEMES OF TRIBAL DEVELOPMENT]

जनजातीय विकास का इतिहास ब्रिटिश काल से शुरू हो गया था। छत्तीसगढ़ राज्य में जनजातियाँ दुर्गम वनों और पहाड़ों में रहती हैं, इसीलिए इनकी जीवन शैली स्वतन्त्र होती है। जनजाति वह सामाजिक समुदाय है जो राज्य में विकास के पूर्व अस्तित्व में था। आज भारत शासन की नीति जनजातियों के विकासात्मक कार्यों के लिए सक्रिय दिखाई देती है। जनजाति वस्तुत: भारत के आदिवासियों के लिए प्रयोग होने वाला एक संवैधानिक पद है। भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति पद का प्रयोग हुआ है। जनजाति लोग जंगल पर आश्रित होने के कारण जल, जंगल और जमीन को अपना अधिकार मानते हैं। ब्रिटिश शासन काल में विभिन्न जनजातियों से सम्पर्क स्थापित करने हेतु 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों ने ईसाई संगठनों की सहायता ली। उनका उद्देश्य जंगलों से मिलने वाली बेशकीमती लकड़ियाँ थीं। इनके दोहन से जनजातियों का विरोध न हो, इस चिन्ता के कारण उनसे सम्पर्क करने पर मजबूर किया, जबकि स्वतन्त्रता आन्दोलन के सूत्रधारों ने जनजातियों के प्रति भावनात्मक सहानुभूति व्यक्त की थी।

जनजाति विकास का प्रभाव जनजाति जनसंख्या की अधिकारहीनता की परिस्थिति को सुधारते हुए उनके जीवन में गुणात्मक प्रगति करना है। भारत का संविधान अनुसूचित जनजातियों को वैधानिक संरक्षण और सुरक्षा देता है। संवैधानिक प्रावधानों के अलावा जनजातियों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए शासन द्वारा कई कार्यक्रम संचालित किये गये हैं।

स्वतन्त्रता के पूर्व जनजातीय विकास
(TRIBAL DEVELOPMENT BEFORE INDEPENDENCE)

अंग्रेजों को जंगलों से बहुमूल्य लकड़ियाँ प्राप्त करना था, इसका विरोध जनजातियों के द्वारा किया जा रहा था। अंग्रेज शासकों ने जनजातीय क्षेत्रों में बाह्य लोगों के प्रवेश को रोक दिया, जबकि ईसाई संगठनों, जमींदारों और वन ठेकेदारों को प्रवेश की अनुमति थी। भारत में विदेशी शक्तियों ने भारत के खिलाफ स्वतन्त्रता के आस-पास उत्तर-पूर्वी जनजातियों को भड़काने की कोशिश की जिससे पृथक्करण की नीति ने जनजातियों को राष्ट्र की मुख्य धारा से दूर कर दिया। यह सच है कि मिशनरियों ने जनजातियों के विकास के लिए कई अच्छे कार्य किये, जिनमें मुख्यत: स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में कार्य किये गये थे।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जनजातीय विकास
(TRIBAL DEVELOPMENT AFTER INDEPENDENCE)

सन् 1955 में बस्तर अंचल के जिला मुख्यालय जगदलपुर में अखिल भारतीय जनजातीय सम्मेलन हुआ। जिसमें भारत के तत्कालीन पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने उद्बोधन में कहा था कि "आप जहाँ भी रहते हैं, आपको अपने तरीकों से रहना चाहिए, यह वही है कि जो मैं चाहता हूँ कि आप स्वयं निर्धारित करें कि आप किस तरह से रहना चाहेंगे। आपकी पुरानी रीति-रिवाजें अच्छी हैं, हम यह चाहते हैं, उन्हें जीवित रहना चाहिए, परन्तु इसके साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि आपको शिक्षित करना चाहिए तथा देश के कल्याण में अपना भाग लेना चाहिए।"

पं. जवाहरलाल नेहरू ने जनजातियों के विकास हेतु पाँच मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिसे 'पंचशील का सिद्धान्त' कहा जाता है–

1. लोगों को अपनी प्रगति अपनी मनपसन्द की राह के अनुसार ही करनी चाहिए, हमें किसी भी चीज को उन पर लादने से बचना चाहिए।

2. विकास और प्रशासन को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
3. भूमि व जंगलों पर जनजातियों के सनातनी हक का आदर करना चाहिए।
4. इस क्षेत्र की प्रगति की विभिन्न योजनाओं तथा अति-प्रशासन से बचना चाहिए।
5. अन्तिम परिणाम के समय आँकड़ों और लागत की रकम के स्थान पर व्यक्ति के चरित्र के विकास का लेखा-जोखा लेना चाहिए।

जनजाति विकास के लिए भारत सरकार द्वारा किये गये प्रयास

भारत सरकार द्वारा जनजातियों के विकास के लिए निम्नलिखित प्रयास किये गये—

1. बहुउद्देशीय जनजातीय विकासखण्ड समिति का प्रतिवेदन, 1960
2. अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजाति आयोग का प्रतिवेदन, 1961
3. ग्रामीण समुदाय के कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए अध्ययन समूह का प्रतिवेदन, 1961
4. अनुसूचित जाति और जनजाति रोजगार पर आयोजित सेमिनार का प्रतिवेदन, 1964
5. वन क्षेत्रों में जनजातीय अर्थव्यवस्था समिति का प्रतिवेदन, 1964
6. जनजातीय विकास कार्यक्रम समिति का प्रतिवेदन, 1969
7. अनुसूचित जाति और जनजाति कल्याण के लिए गठित संसदीय समिति का प्रतिवेदन, 1972
8. जनजातीय विकास के लिए विशेषज्ञ समिति का प्रतिवेदन, 1972
9. जनजातीय मामलों के मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत वार्षिक प्रतिवेदन
10. अनुसूचित जनजाति आयोग द्वारा प्रस्तुत वार्षिक प्रतिवेदन।

उपर्युक्त प्रतिवेदनों और सुझावों के आधार पर अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य और अधो-संरचनात्मक विकास के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक प्रावधान किये गये, जो निम्नवत् हैं—

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में जनजातीय विकास के लिए ₹ 22.22 करोड़ खर्च किये गये। **द्वितीय पंचवर्षीय योजना** (1956-61) में विशेष बहुउद्देशीय जनजाति विकासखण्ड का गठन किया गया। **तृतीय पंचवर्षीय योजना** (1961-66) में जनजातीय विकासखण्डों को सर्वांगीण विकास की इकाई स्वीकृत की गयी। **चतुर्थ पंचवर्षीय योजना** (1969-74) में जनजातीय विकास के लिए क्षेत्रीय विकास उपागम योजना लागू की गयी। **पाँचवीं पंचवर्षीय योजना** (1974-79) में समन्वित विकास परियोजना शुरू की गई। **छठी पंचवर्षीय योजना** (1980-85) में जनजातीय उप-योजना लागू की गई। **सातवीं पंचवर्षीय योजना** (1985-90) में गरीबी उन्मूलन को ध्यान में रखकर समन्वित विकास योजना शुरू की गयी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना तक जो भी कार्यक्रम शुरू किये गये उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है। इन सभी विकास योजनाओं का लाभ छत्तीसगढ़ की जनजातियों को मिल रहा है। इसके साथ-साथ छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा जनजातियों के विकास हेतु वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है।

संवैधानिक व्यवस्था
(CONSTITUTIONAL SYSTEM)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366(25) के अनुसार, 'अनुसूचित जनजातियों' से ऐसी जनजातियाँ या जनजातीय समुदायों के भाग या उनमें के यूथ अभिप्रेत हैं जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद-342 के अधीन अनुसूचित जनजातियाँ माना जाता है।

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए संवैधानिक प्रावधान

अनुसूचित जनजातियों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए भारतीय संविधान में संरक्षण, संवर्द्धन एवं उत्थान के लिए कुछ विशेष प्रावधान और उपाय किये गये हैं, जो अग्रलिखित हैं—

अनुच्छेद 15(4)—जनजातियों का सामाजिक और शैक्षिक रूप से विकास करता है।

अनुच्छेद 16(4)—यह राज्य को सरकारी नौकरी में जनजाति लोगों को प्रतिनिधित्व देने के लि आरक्षण का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 23—यह जनजातियों से दुर्व्यवहार, बेगार, बन्धक मजदूरी का निषेध करता है।

अनुच्छेद 29—यह अनुसूचित जनजाति को अपनी भाषा, बोली और संस्कृति को सुरक्षित रख का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 46—यह शैक्षिक और आर्थिक विकास के विषय में सुरक्षा देता है।

अनुच्छेद 164(A)—यह छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, ओडिशा एवं झारखण्ड में अनुसूचित क्षेत्रों राज्यों में जनजाति मन्त्री के प्रावधान का वर्णन करता है।

अनुच्छेद 243(D)—पंचायतों में आरक्षण का प्रावधान (73वाँ संविधान संशोधन)।

अनुच्छेद 243(T)—नगरीय निकायों में आरक्षण का प्रावधान (74वाँ संविधान संशोधन)।

अनुच्छेद 244—यह जनजाति क्षेत्र में 6वीं अनुसूची के अन्तर्गत स्व-शासन की व्यवस्था करती है

अनुच्छेद 275—जनजाति क्षेत्रों के लिए विशेष प्रकार के अनुदान की व्यवस्था।

अनुच्छेद 330—लोकसभा में जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान।

अनुच्छेद 332—राज्य विधानसभा में जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान।

अनुच्छेद 335—संघ और राज्य सेवाओं के सरकारी नौकरियों में जनजातियों के लिए पदों के आरक्षण की व्यवस्था।

अनुच्छेद 338(क)—89वाँ संविधान संशोधन के अन्तर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन का प्रावधान।

अनुच्छेद 342—राष्ट्रपति किसी राज्य अथवा संघ राज्य के सम्बन्ध में और जहाँ वह राज्य है उसे राज्यपाल से परामर्श करने के बाद लोक अधिसूचना द्वारा किसी भी समुदाय को अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में सम्मिलित कर सकते हैं।

अनुच्छेद 366(25)—अनुसूचित जनजातियों से ऐसी जनजातियाँ या जनजाति समुदाय अथवा ऐसी जनजातियों या जनजाति समुदायों के भाग या उनमें के अभिप्रेत हैं, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाता है।

संवैधानिक उपाय (Constitutional Remedies)

अनुसूचित जातियों को कमजोर समूह के रूप में मान्यता देने के सिद्धान्त का अनुपालन करने हेतु संविधान में अनुसूचित जातियों के संरक्षण व उत्थान के लिए कुछ प्रावधान तथा उपाय सम्मिलित किये गये हैं—

1. राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy)—भारतीय संविधान में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के तहत् अनुच्छेद-46 में विकासात्मक व नियामक दोनों ही पक्षों को विस्तृत रूप में सम्मिलित किया गया है—

अनुच्छेद-46 में कहा गया है कि "राज्य समाज के कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक व आर्थिक हितों का विशेष ध्यान रखेगा तथा सामाजिक अन्याय व हर तरह के शोषण से उसकी रक्षा करेगा।"

2. सामाजिक उपाय (Social Measures)—संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान है। यह किसी भी रूप में इसके प्रचलन पर रोक लगाता है। अनुच्छेद 23 मानव व्यापार तथा बन्धुआ मजदूरी या बेगार पर नियन्त्रण लगाता है।

3. अनुच्छेद 15(4) में अनुसूचित जातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए विशेष उपाय किये गये हैं। इन उपायों में शैक्षिक संस्थाओं में सीटों एवं छात्रवृत्तियों के आरक्षण का प्रावधान है।

4. संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि राज्य अनुसूचित जातियों के आर्थिक हितों का विशेष रूप से ध्यान रखेगा तथा उन्हें सामाजिक अन्याय व हर तरह के शोषण से संरक्षण प्रदान करेगा।

5. संविधान के अनुच्छेद 330, 332 तथा 334 में लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं, अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों को विशेष प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गयी है। राजनैतिक आरक्षण की व्यवस्था शुरुआत में 10 वर्ष के लिए की गयी थी, लेकिन बाद में इसे 10 वर्ष के अन्तराल से बार-बार बढ़ाया जा रहा है।

6. अनुच्छेद 16(4) ऐसे पिछड़े वर्गों के व्यक्तियों को नौकरियों में आरक्षण की सुविधा उपलब्ध कराता है, जिनका प्रतिनिधित्व सेवाओं में पर्याप्त नहीं है। इस सन्दर्भ में यह समझना आवश्यक है कि संविधान में प्रयुक्त 'पिछड़े वर्ग' का अर्थ अत्यधिक विस्तृत है जिसमें अनुसूचित जातियाँ तथा अनुसूचित जनजातियाँ भी सम्मिलित हैं। इसे आगामी 85वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा संशोधित किया गया। यह संशोधन 17 जून, सन् 1995 से प्रभावी माना गया है।

अनुच्छेद 335 में यह प्रावधान किया गया है कि सरकारी सेवाओं एवं पदों पर नियुक्तियाँ करते समय प्रशासनिक प्रभावकारिता से संगति बनाये रखते हुए अनुसूचित जाति में उम्मीदवारों के दावों का ध्यान रखा जायेगा (यह अनुसूचित जनजाति पर भी लागू)। परन्तु प्रशासन की कार्य-कुशलता को सम्पोषित करते हुए समन्वय बैठाना चाहिए।

7. अनुच्छेद 335 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष अधिकारी को नियुक्त करने का प्रावधान है। इन अधिकारियों का यह दायित्व होगा कि वह इन समस्त उपायों के क्रियान्वयन से राष्ट्रपति को परिचित कराये। संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और नियन्त्रण के लिए भी विशेष प्रावधान है।

जनजातीय विकास के विशेष कार्यक्रम

(SPECIAL PROGRAMMES FOR TRIBAL DEVELOPMENT)

जनजातियों की समस्याओं का समाधान करने हेतु सरकार ने समय-समय पर कई प्रयास किये, उनका संक्षेप में निम्नवत् वर्णन किया जा रहा है–

1. संविधान के अनुच्छेद 330 एवं 332 के अन्तर्गत लोकसभा एवं राज्यों की विधानसभाओं में अनुसूचित जनजातियों हेतु राज्य में उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित किये गये हैं। वर्तमान में लोकसभा में अनुसूचित जनजातियों हेतु 47 स्थान और विधानसभाओं में कुल 527 स्थान आरक्षित हैं।
2. केन्द्र सरकार द्वारा खुली प्रतियोगिता के माध्यम से होने वाली नियुक्तियों में अनुसूचित जनजातियों हेतु 7.5 प्रतिशत स्थान सुरक्षित हैं। इस वर्ग के लिए पदोन्नति हेतु भी 7.5% पद सुरक्षित हैं।
3. जनजातीय लोगों के विकास हेतु उनमें शिक्षा का प्रसार होना अत्यावश्यक है। वर्तमान समय में जनजातियों में साक्षरता का प्रतिशत मात्र 35 है, जबकि भारत में साक्षरता का कुल प्रतिशत 73.0 है। इस स्थिति में सुधार करने हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने जनजातियों में शिक्षा का प्रसार करने हेतु बहुत प्रयास किये हैं।

   अनुसूचित जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को विशेष निर्देश दिये गये। इसके लिए सरकार ने 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति अधिनियम, 1989' पारित किया, जिसे 30 जनवरी सन् 1990 से लागू किया गया। इस अधिनियम में यह स्पष्ट लिखा है कि किन अपराधों को जनजातियों पर अत्याचार माना जायेगा।
5. सरकार ने सन् 1987 में 'जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ' की स्थापना की थी। इस संघ ने अप्रैल, 1988 से कार्य करना शुरू किया। यह संघ जनजातियों द्वारा उत्पादित कृषि पदार्थों और अलग-अलग प्रकार की वस्तुओं को अपने पास एकत्रित करके उनकी

बिक्री का प्रबन्ध करता है। इसके परिणामतः जनजातियों को पहले की अपेक्षा अपनी वस्तुओं की अच्छी कीमत मिलने लगी।

6. सरकार ने सन् 1980 से जनजातीय विकास हेतु एक योजना शुरू की, जिसे 'समन्वित जनजातीय विकास योजना' कहा जाता है। इसके माध्यम से जनजातियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं; **जैसे**—रोजगार, प्रशिक्षण, ऋण एवं अनुदान। वर्तमान समय में केन्द्र सरकार उन राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को विशेष आर्थिक सहायता दे रही है, जो 'जनजातीय उप-योजना नीति' को लागू करके जनजातियों को विकास की सुविधाएँ दे रहे हैं।
7. भारत के कई राज्यों में अब तक 15 जनजातीय अनुसन्धान संस्थान स्थापित हो चुके हैं। इन संस्थानों में जनजातीय जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं व ललित कलाओं से सम्बन्धित संग्रहालयों की स्थापना हुई है। इसके अलावा इन संस्थानों के द्वारा जनजातीय संस्कृति से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य करने के साथ-साथ जनजातीय साहित्य का प्रकाशन भी किया जाता है। इनमें समय-समय पर गोष्ठियाँ व कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं। इनका उद्देश्य जनजातीय उप-योजनाओं हेतु महत्वपूर्ण सुझाव देना व जनजातियों को विशेष प्रशिक्षण प्रदान करना है।
8. छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों एवं कर्नाटक के कई आदिवासी क्षेत्रों में खानों एवं उद्योगों का विकास होने से कई आदिवासी परिवार बे-घर हो गये थे। इसके अलावा नये वन कानूनों के द्वारा स्थानान्तरित खेती पर रोक लगाने व जनजातियों को वनों से वस्तुएँ एकत्रित करने की अनुमति न मिलने के कारण जनजातियों में आजीविका उपार्जन की समस्या पैदा हो गई थी। इसके लिए राज्य सरकार ने प्रभावित परिवारों को कृषि-भूमि प्रदान की तथा एक कमरे वाले मकानों का निर्माण कराया।

जनजातियों के विकास के लिए कार्यक्रम और नीतियाँ
(PROGRAMMES AND POLICIES FOR THE DEVELOPMENT OF TRIBES)

छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा जनजातियों के विकास के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम और नीतियाँ बनाई गई हैं तथा इनका संचालन किया जा रहा है, वे निम्नलिखित हैं—

1. इन्दिरा वन मितान योजना—इस योजना का शुभारम्भ 9 अगस्त, सन् 2020 को मुख्यमन्त्री भूपेश बघेल के द्वारा किया गया था। इस योजना का उद्देश्य आदिवासी अंचल विकास के लोगों के रोजगार को बढ़ाना है। योजना के अन्तर्गत 19 लाख परिवारों को सम्मिलित किया जायेगा और लाभान्वित किया जायेगा। इस योजना के तहत वन समूहों के द्वारा बिकने वाली वनोपज का उचित मूल्य मिलेगा। योजना के तहत् वनोपज प्रोसेसिंग केन्द्र की स्थापना भी की जायेगी, जोकि प्रत्येक आदिवासी विकासखण्ड में बनाये जायेंगे। कुल 85 विकासखण्डों पर यह केन्द्र स्थापित किये जायेंगे।

2. पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्तियाँ—पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले अनुसूचित जनजाति वर्ग के विद्यार्थियों को दी जाती है। यह छात्रवृत्ति विद्यार्थियों को इस उद्देश्य से दी जाती है कि उन्हें आर्थिक समस्याओं का सामना न करना पड़े।

3. छात्रावास योजना—इस योजना के तहत् कक्षा 6 से कॉलेज तक अनुसूचित जनजाति के बालक-बालिकाओं को रहने के लिए अलग-अलग छात्रावास संचालित किये जाते हैं। इन छात्रावासों में छात्र-छात्राओं के लिए विभिन्न प्रकार की निःशुल्क सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती हैं, **जैसे**—भोजन, आवास, जल, बिजली, पुस्तकें इत्यादि।

4. आश्रमशाला योजना—इस योजना के तहत् कक्षा 1-8 तक की कक्षाएँ संचालित की जाती हैं। इस योजना का उद्देश्य प्रदेश में वनांचल और दूरस्थ क्षेत्रों में शैक्षणिक सुविधा देना है। प्रदेश में अनुसूचित जाति के लिए 51 तथा अनुसूचित जनजाति के लिए 1175 आश्रमशालाएँ संचालित हैं। इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्र-छात्राओं को निःशुल्क शिक्षा के साथ-ही-साथ आवास और भोजन की निःशुल्क सुविधा भी सुलभ करायी जाती है।

6527

5. कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना—

विभाग का नाम	—	स्कूल शिक्षा विभाग
योजना का नाम	—	कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना
कार्यक्षेत्र	—	सम्पूर्ण छत्तीसगढ़
योजना का उद्देश्य	—	अनुसूचित जाति, जनजाति की कन्याओं की शिक्षा में प्रोत्साहन के लिए
हितग्राही की पात्रताएँ	—	शालाओं में कक्षा 6 में प्रथम बार प्रवेशित अनुसूचित जाति, जनजाति की छात्राएँ
मिलने वाले लाभ	—	₹ 500 प्रतिवर्ष (दस माह के लिए)
आवेदन की प्रक्रिया	—	छात्रवृत्ति पोर्टल के द्वारा ऑनलाइन

इस योजना के तहत् वर्ष 2023-24 में अनुसूचित जनजाति की कुल 57,046 छात्राओं को कुल ₹ 1,01,50,500 और अनुसूचित जनजाति की कुल 23,319 छात्राओं को कुल ₹ 2,54,93,500 का भुगतान किया जा रहा है।

6. सरस्वती सायकल योजना—

विभाग का नाम	—	स्कूल शिक्षा विभाग
योजना का नाम	—	नि:शुल्क सरस्वती सायकल योजना
क्रियान्वयन एजेन्सी	—	स्कूल शिक्षा विभाग
कार्यक्षेत्र	—	सम्पूर्ण छत्तीसगढ़
योजना का उद्देश्य	—	बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना
प्राप्त होने वाले लाभ	—	शासकीय और अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्था में अध्ययनरत् बालिका
चयन प्रक्रिया	—	शासकीय अनुदान प्राप्त विद्यालयों और स्वामी आत्मानन्द उत्कृष्ट नियमित रूप से अध्ययनरत् कक्षा 9 के छात्राओं के एसटी, एससी और बीपीएल वर्ग के बालिकाओं के लिए प्रदान किया जाता है।

7. मुख्यमन्त्री ज्ञान प्रोत्साहन योजना—इस योजना को छत्तीसगढ़ राज्य सरकार के द्वारा शुरू किया गया। इस योजना के द्वारा सरकार अच्छे अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को एकमुश्त ₹ 15,000 की प्रोत्साहन राशि देती है। इस योजना में केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्र ही आवेदन कर सकते हैं। इसमें मैरिट के आधार पर सीधे विद्यार्थियों से शाला स्तर पर आवेदन और जिला स्तर से अन्तिम परीक्षण के बाद भुगतान के लिए संचालक लोक शिक्षण को प्रेषित करेगा। प्रोत्साहन राशि सीधे विद्यार्थियों के बैंक खाते में बेनिफिट ट्रान्सफर के द्वारा पहुँचायी जाएगी।

8. राष्ट्रीय साधन सह प्रावीण्य छात्रवृत्ति (केन्द्र प्रवर्तित योजना)

विभाग का नाम	—	स्कूल शिक्षा विभाग
योजना का नाम	—	कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना
कार्यक्षेत्र	—	सम्पूर्ण छत्तीसगढ़
उद्देश्य	—	अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की कन्याओं को शिक्षा में प्रोत्साहन के लिए वित्तीय सहायता देना
पात्रताएँ	—	शालाओं में कक्षा 6 में प्रथम बार प्रवेशित अनुसूचित जाति, जनजाति की छात्राएँ

मिलने वाले लाभ – ₹ 500 प्रत्येक वर्ष (दस माह के लिए)

आवेदन प्रक्रिया – छात्रवृत्ति पोर्टल के द्वारा ऑनलाइन आवेदन

इस योजना के अन्तर्गत वर्ष 2023-24 में अनुसूचित जनजाति की कुल 57,046 छात्राओं को कुल ₹ 1,01,50,500 और अनुसूचित जाति की कुल 23,319 छात्राओं को कुल ₹ 2,54,93,500 का भुगतान किया जा रहा है।

9. जवाहर उत्कर्ष योजना—इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के ग्रामीण प्रतिभावान छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुलभ कराना है। योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष 200 विद्यार्थियों को लाभान्वित करने का लक्ष्य है।

10. सार्वभौम सार्वजनिक वितरण प्रणाली—इस योजना को राज्य के समस्त परिवारों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए 2 अक्टूबर, 2019 को शुरू किया गया। इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता राशन कार्डों के खाद्यान्न पात्रता में वृद्धि के साथ-साथ सामान्य परिवारों के लिए भी पात्रता निर्धारित की गयी। इस योजना के माध्यम से अनुसूचित क्षेत्र में रहने वाले परिवार को चावल, चना और आयोडीन युक्त नमक दिया जा रहा है। चयन की पात्रता राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों और माड़ा क्षेत्रों में निवास करने वाले सभी अन्त्योदय व प्राथमिकता वाले राशन कार्डधारी परिवारों को है। उपर्युक्त सामग्री के अलावा अन्त्योदय और प्राथमिकता परिवारों को प्रति राशन कार्ड ₹ 17 प्रति किग्रा की दर से 1 किलो शक्कर की पात्रता है। बस्तर संभाग के जिलों में अन्त्योदय, प्राथमिकता, एकल निराश्रित और नि:शक्तजन राशन कार्डधारियों को प्रतिमाह 2 किलो गुड़ ₹ 17 प्रति किग्रा की दर से दिया जा रहा है।

11. सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना—इस योजना को सरकार द्वारा सन् 2010-11 में शुरू किया गया था। इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अभ्यार्थियों को संघ लोक सेवा आयोग के द्वारा आयोजित सिविल सेवा को प्रारम्भिक परीक्षा में सफल होने पर मुख्य परीक्षा की तैयारी के लिए ₹ 1 लाख राशि दी जाती है।

12. एकलव्य स्कूल—यह छत्तीसगढ़ राज्य सरकार द्वारा सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1973 के अन्तर्गत पंजीकृत संस्था है। वर्तमान में आवासीय विद्यालय के द्वारा यह संस्था सम्पूर्ण राज्य में संचालित है।

13. मुख्यमन्त्री बाल भविष्य योजना—यह योजना सन् 2010 में शुरू की गयी थी। यह अनुसूचित क्षेत्र, आदिवासी उपयोजना क्षेत्र और नक्सल प्रभावित जिलों के लिए क्रियान्वित की जा रही है। इस योजना के निम्न चार घटक हैं—

(i) आस्था गुरुकुल विद्यालय की शुरुआत वर्ष 2007 में हुई थी। यह दन्तेवाड़ा जिले में कक्षा 1-12 तक नक्सल हिंसा से अनाथ हुए बच्चों के लिए संचालित है। वर्तमान समय में 1 आस्था गुरुकुल विद्यालय संचालित है। वर्ष 2023-24 में इस विद्यालय में 99 बालक, 97 कन्या कुल 196 विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं।

(ii) राजनांद गाँव जिले में नक्सल हिंसा में मृत माता-पिता के बच्चे/पीड़ित परिवार के बच्चे और प्रभावित ग्राम/क्षेत्र के बच्चे को कक्षा 1-12 तक निजी शैक्षणिक संस्थाओं के प्रबन्ध से चर्चा करके विद्यार्थियों को नि:शुल्क प्रवेश दिलाया जाता है। इस योजना को 2020-21 में बन्द कर दिया गया। इसमें नये विद्यार्थियों को प्रवेश नहीं दिया जा रहा है।

(iii) नक्सल प्रभावित जिले के 9-12 तक शालेय शिक्षा और साथ-ही-साथ इन्जीनियरिंग, मेडिकल, राष्ट्रीय प्रतिभा/सीए/सीएस/सीएमए/सीएलएटी आदि प्रवेश परीक्षाओं की कोचिंग देकर इन विद्यार्थियों की स्वयं की प्रतिभा के जोर पर सफल होने योग्य बनने का प्रयास किया जाता है। वर्तमान समय में जिला रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर, बस्तर, सरगुजा, कोरबा, कांकेर, जशपुर और बालोद में कुल 14 आवासीय विद्यालय संचालित हैं।

(iv) इसके अन्तर्गत 12वीं उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए आर्थिक सहयोग दिया जाता है। यह योजना दन्तेवाड़ा में संचालित है।

14. रोशनी कार्यक्रम—यह नक्सल प्रभावित जिला के लिए विशेष परियोजना है। यह 2013 को शुरू की गयी थी। 1 अप्रैल, 2013 को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत् कौशल विकास के लिए राज्य के 8 नक्सल प्रभावित अनुसूचित जनजाति बाहुल्य जिलों को सम्मिलित किया था, जो इस प्रकार हैं—बस्तर, कांकेर, दन्तेवाड़ा, सुकमा, बीजापुर, नारायणपुर, कोण्डागाँव तथा बलरामपुर इत्यादि। इन जिलों में 15-35 वर्ष के युवाओं को कौशल उन्नयन के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा। इसके साथ ही 40% महिलाओं को प्रशिक्षण देना प्रावधानिक है।

15. राजीव युवा उत्थान योजना—यह योजना पूर्व में युवा कैरियर योजना के नाम से संचालित थी। इस योजना के तहत् ट्रायबल यूथ हॉस्टल द्वारा नई दिल्ली में रहकर संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए 50 सीटें स्वीकृत हैं। छत्तीसगढ़ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के लिए 100 सीटें स्वीकृत हैं, जिसमें से 50 सीटें जिला रायपुर और 50 सीटें जिला दुर्ग में प्रशिक्षण संचालित हैं। इसके अलावा बैंकिंग, रेलवे, एस. एस-सी. जैसी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए बिलासपुर, रायपुर, नारायणपुर, जगदलपुर तथा कबीरधाम में 100-100 सीटें स्वीकृत हैं।

अभ्यास प्रश्न
(EXERCISE QUESTIONS)

❑ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजातीय विकास का विस्तृत वर्णन कीजिए। (Describe the tribal development in detail.)
2. अनुसूचित जनजातियों के विकास के विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और उपायों का वर्णन कीजिए। (Explain the various constitutional provisions and measures for the development of Scheduled Tribes.)
3. जनजातियों की समस्याओं का समाधान करने हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयासों की विस्तृत विवेचना कीजिए। (Critically examine the efforts made by the government to resolve the problems of the tribes.)
4. छत्तीसगढ़ में जनजातीय विकास के विभिन्न कार्यक्रम एवं नीतियों का वर्णन कीजिए। (Describe various programmes and policies for tribal development in Chhattisgarh.)

❑ लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजातीय विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (Give a brief introduction of tribal development.
2. जनजाति विकास के लिए भारत सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (Give brief overview of the efforts made by the Government of India for tribal development
3. जनजातीय विकास के कोई चार विशेष कार्यक्रमों को संक्षेप में बताइए। (Briefly describe any fou special programmes related to tribal development.)
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (Write short notes on the following :)
   (अ) इन्दिरा वन मितान योजना (Indira Van Mitran Yojana)
   (ब) सार्वभौमिक सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Universal Public Distribution System)
   (स) राजीव युवा उत्थान योजना (Rajiv Yuva Utthan Yojana)

❑ वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)